

## प्रथम अध्याय

### 1. मध्यमवर्गीय यथार्थ : सैद्धान्तिक स्वरूप

#### 1.1 यथार्थ का सैद्धान्तिक स्वरूप

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । वह संसार के अन्य जीवों से भिन्न है। जब से सृष्टि का सूत्रपात हुआ है तब से सर्वश्रेष्ठ एवं उत्कृष्ट प्राणी का स्थान मनुष्य को ही मिला है क्योंकि मनुष्य ने बुद्धि का सहारा लेकर उन्नति के मार्ग पर निरन्तर बढ़ना सीखा है तथा आज के इस वैज्ञानिक युग में अपने आप को स्थापित कर लिया है ।

साहित्य में मानव- जीवन का यथार्थ निहित है । साहित्यकार समाज में होने वाली प्रत्येक घटना को देखकर, बिना किसी पक्षपात के अपनी रचनाओं में ज्यों का त्यों चित्र चित्रित करता है । इसलिए साहित्य को युग विशेष का दर्पण भी माना गया है क्योंकि युग अथवा समाज का वास्तविक चित्रण करना ही यथार्थ कहलाता है ।

साहित्य हमेशा से यथार्थ चित्रण का माध्यम रहा है । संसार के प्राचीन साहित्य और कला रूपों को देखने से मालूम होता है कि सूचनाकार और कलाकार भी यथार्थ से विमुख नहीं रहे । साहित्य और कला में यथार्थ का चित्रण हमेशा हुआ है । प्रत्येक भाषा के साहित्य में प्रारम्भिक काल से ही यथार्थ का चित्रण होता रहा है तथा यथार्थ साहित्य का मुख्य विषय रहा है इसलिए साहित्य वही माना जाता है जिसमें जीवन का यथार्थ निहित होता है ।

जिस प्रकार समय के साथ-साथ समाज बदलता रहता है, ठीक उसी प्रकार समाज का सत्य भी बदलता है । परिस्थितियों के अनुसार यथार्थ भी निरन्तर बदलता रहता है क्योंकि जो भूतकाल में था वह वर्तमानकाल में नहीं और जो वर्तमान काल में है जरूरी नहीं कि भविष्य में भी ऐसा ही होगा । साहित्यकार तो आदर्श और कल्पना से नाता तोड़कर समाज की युगीन सच्चाई को बिना किसी लाग-लपेट के अभिव्यक्त करने लगे तो वह यथार्थ चित्रित करता है।

### 1.1.1 यथार्थ का अर्थ

‘यथार्थ’ शब्द दो शब्दों के योग से बना है- यथा+अर्थ । यथार्थ का सम्बन्ध वास्तविकता से है । जो वास्तव में विद्यमान है, वह यथार्थ है । मानव जीवन से जुड़ा प्रत्येक पहलू यथार्थ की श्रेणी में आता है । कोई भी साहित्यकार कोरी कल्पना के आधार पर समाज का साक्षात् चित्रण प्रस्तुत नहीं कर सकता । साहित्य तभी सफल होता है जब साहित्यकार अपनी रचना में मानव-जीवन के वास्तविक चित्र प्रस्तुत करता है । यथार्थ का चित्रण करना कोई आसान कार्य नहीं है । किसी भी घटना या दृश्य को ज्यों का त्यों साहित्य में उतार पाना टेढ़ी खीर है । लेकिन एक प्रतिभाशाली साहित्यकार अपनी प्रतिभा के बल पर समाज का सजीव चित्रण प्रस्तुत करता है । केवल समाज में फैली बुराइयों को साहित्य में चित्रित करना ही यथार्थ नहीं है, बल्कि मानव जीवन से जुड़ी प्रत्येक घटना यथार्थ है ।

शिवकुमार मिश्र के अनुसार, “यथार्थ के अन्तर्गत वे सभी क्रियाएँ सम्मिलित हैं, जिनका आदमी अनुभव एवं परिज्ञान करने के सिलसिले में भागीदार है । वस्तुतः यथार्थ उन सभी विषयों को अपनी परिधि में लेता है, जो मानव तथा जीवन से जुड़े हैं । इसकी सार्थकता मनुष्य सम्पूर्ण व्यक्तित्व को साकार करने में निश्चित है । सामाजिक जीवन में ही नहीं, निजी जीवन में मनुष्य हर्ष-विषाद, सुख-दुःख, जय-पराजय आदि के लिए यथार्थवाद में पूर्ण अवकाश है।”<sup>1</sup>

इस प्रकार अच्छा-बुरा, कोमल-कठोर, सुंदर-कुरूप आदि सभी स्थितियाँ मानव-जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करती हैं ।

### 1.1.2 यथार्थ की परिभाषाएँ

यथार्थ के सम्बन्ध में भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषायें इस प्रकार हैं :-

---

1. शिवकुमार मिश्र, यथार्थवाद, दि मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड, दिल्ली, 1983, पृ० 156

डिक्शनरी ऑफ लिटरेरी टर्मस में, “यथार्थ को सत्य चित्रण की पद्धति विशेष माना गया है । लिखने की एक ऐसी पद्धति जिसमें पारिवारिक जीवन की वास्तविकता या जीवन का जैसा है, चित्रण करना ही यथार्थवाद है ।”<sup>1</sup>

नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार, “यथार्थवाद वस्तुओं की पृथक सत्ता समर्थक है । वह समष्टि की अपेक्षा व्यष्टि की ओर अधिक उन्मुख रहता है। यथार्थवाद का सम्बन्ध प्रत्यक्ष वस्तु जगत से है।”<sup>2</sup>

मुंशी प्रेमचन्द ने यथार्थ के विषय में कहा है- “यथार्थवाद का आशय यह नहीं है कि हम अपनी दृष्टि को अन्धकार की ओर केन्द्रित कर दें । अंधकार में मनुष्य को अंधकार के सिवाय सूझ ही क्या सकता है। साहित्य का सम्बन्ध सत्य और सुन्दरता से है ।”<sup>3</sup>

मानक हिन्दी कोश में यथार्थ वह है, “जो अपने अर्थ आशय, उद्देश्य, भाव आदि के अनुरूप ठीक हो । ठीक, वाजिब उचित, जैसा होना चाहिए, ठीक वैसा ।”<sup>4</sup>

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है कि साहित्य अथवा कलागत यथार्थ सामाजिक परिवेश के अनुकूल चलते हुए स्वयं को समाज के अनुरूप परिवर्तित करता रहा है- “कला के क्षेत्र में यथार्थ एक ऐसी मानसिक प्रवृत्ति है जो निरन्तर अवस्था के अनुकूल परिवर्तित और रूपायित होती रहती है ।”<sup>5</sup>

त्रिभुवन सिंह, “यद्यपि यथार्थ को एक जीवन दृष्टि माना है तथापि इस सत्य से असहमत है कि साहित्य का यथार्थ समाज के यथार्थ से अभिन्न होता है ।”<sup>6</sup>

- 
1. हेरिशा, डिक्शनरी ऑफ लिटरेरी टर्मस, पृ० 316
  2. नन्ददुलारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य, भारती भण्डार, प्रयाग, 1957, पृ० 393
  3. रामदरश मिश्र, कथाकार प्रेमचन्द, पृ० 4
  4. रामचन्द्र वर्मा, मानक हिन्दी कोश, (खण्ड-4), प्रयाग, प्रथम संस्करण, 1965, पृ० 435
  5. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, विचार और वितर्क, साहित्य भवन प्रा० लि०, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, 1961, पृ० 95
  6. त्रिभुवन सिंह, हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, वि० सं० 2014, पृ० 12

दि लिविंग वैबस्टर इन्साइक्लोपीडिक डिक्शनरी में “वास्तविकता के साथ तादात्म्य, वस्तुओं को जैसी है- प्रदर्शित करना या वर्णन करना, यथार्थ है।”<sup>1</sup>

“Concern with what is real, the tendency to view or represent things as really area.”

दिन्यू कोलम्बिया इन्साइक्लोपीडिया में “मध्यम एवं निम्नवर्ग के जीवन का वास्तविक वर्णन है, जहाँ सामाजिक तत्व के रूप में चरित्र का निर्माण होता है।”<sup>2</sup>

मुक्तिबोध के अनुसार, “आज का यथार्थ कोई रहस्यवादी नहीं है, जिसको समझने के लिए इडा, पिंगला, सुषुम्ना, नाड़ियों को तीव्र करना जरूरी है। आज का यथार्थ जनता के जीवन का यथार्थ है, जो हम स्वयं रोजमर्रा जीते हैं।”<sup>3</sup>

इस प्रकार साहित्य समाज और व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्धों, उसके प्रत्येक आचार-विचारों, उसकी आर्थिक एवं नैतिक परिस्थितियों का मूल्यांकन तत्वकालीन परिवेश के आधार पर वास्तविक रूपों में नहीं करता, उसके इस रूप में भी अभिव्यक्ति देता है कि पाठक का युग के सत्य एवं समाज में होने वाले कार्य व्यापार के औचित्य को सरलता से परख सके और इन मर्यादाओं का अनुसरण कर सके जिन पर चलकर एक आदर्श समाज की स्थापना की जा सकती है।

### 1.1.3 यथार्थ और पृष्ठभूमि

साहित्य में यथार्थवादी परम्परा मूलतः उन्नीसवीं शताब्दी की देन है। इसी काल में साहित्य चिन्तकों एवं रचनाकारों ने इसे प्रौढ़ता प्रदान की। उन्नीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिकों ने जीवन और जगत से सम्बन्ध परम्परागत

- 
1. मेरिया पेई, दि लिविंग वैबस्टर इन्साइक्लोपीडिया डिक्शनरी, इंग्लिश लैंग्वेज इन्स्टीट्यूट ऑफ आगेर, 1977, पृ० 797
  2. विलियम हैरिस, दि न्यू कोलम्बिया इन्साइक्लोपीडिया, कोलम्बिया युनिवर्सिटी प्रैस, 4th Edition, 1975, पृ० 84
  3. मुक्तिबोध, नई कविता का संघर्ष, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1983, पृ० 89

आध्यात्मिक धारणाओं को अमान्य घोषित किया तथा उन्होंने ठोस तथ्यों पर आधारित ऐसी व्याख्याएँ तथा विश्लेषण प्रस्तुत किये, जिससे लोगों का चिन्तन विशेष रूप से प्रभावित हुआ। इस दृष्टिकोण ने जीवन जगत को देखने-परखने की उनकी परम्परागत दृष्टि में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया । जीवन और जगत सम्बन्धी विचारधारा में इस परिवर्तन का श्रेय उन्नीसवीं शताब्दी के प्रसिद्ध चिन्तक डार्विन को जाता है । उन्होंने विकासवाद के सिद्धान्त से यह सिद्ध किया की मनुष्य पशु जगत का विकसित रूप है । डार्विन के इस सिद्धान्त ने पुरानी मान्यताओं विशेषतः आदर्शवाद एवं आध्यात्मिकता की धारणा को जड़ से हिला दिया । अतः मानव बाध्य होकर मनुष्य जीवन और उसकी आकृति तथा उसके विकास क्रम को नये सन्दर्भों में देखने लगा । मनुष्य की आलौकिक व स्वप्नील सौन्दर्य की खोजी आँखों को मानव तथा उसके जीवन की वास्तविक छाया को भौतिक व लौकिक जीवन सन्दर्भों में देखने के लिए विवश होना पड़ा ।

इस काल के बहुत-से विचारकों ने यथार्थ सम्बन्धी दृष्टिकोणों का प्रतिपादन किया । जिनमें कार्ल मार्क्स, मैथ्यू अर्नाल्ड तथा फ्रांस के प्रसिद्ध विचारक सेंटव्यू का नाम आता है । इन्होंने साहित्य एवं कला की जो व्याख्या की है, वह मानव कल्याण तथा लोकमंगल की कामना पर आधारित है । प्रसिद्ध विचारक 'सेंटव्यू' जिन्होंने एक जीवन-शास्त्री का दृष्टिकोण अपनाते हुए कहा था, "जैसा वृक्ष होगा वैसा ही उसका फल होगा ।" सेंटव्यू का यह मत साहित्यकारों के लिए एक चुनौती था । डार्विन के विकासवाद के सिद्धान्त ने मानव को आध्यात्मिकता की सोच को छोड़कर भौतिक धरातल पर प्रतिस्थापित किया था । अतः सेंटव्यू के मत के आधार पर साहित्यकार ने अपनी सोच को परिवर्तित कर समाजोपयोगी बनाने का प्रयत्न किया । सेंटव्यू के मत से लेखकों एवं दार्शनिकों को अपनी सोच को बदलना पड़ा । कहना न होगा कि आदर्शवादी विचारों से मुक्त लेखक आदर्श की स्थापना का प्रयत्न करेगा, वैसा ही यथार्थवादी यथार्थ का । समाज में डार्विन के सिद्धान्त की सिद्धता और

सेंटव्यू के इस चुनौतीपूर्ण दृष्टिकोण में साहित्य चिन्तकों को समाजोपयोगी लेखन के लिए विवश किया ।

इस प्रकार सेंटव्यू के दृष्टिकोण से भाववादी सोच पर करारी चोट लगी। इससे साहित्य लेखन में यथार्थ सम्बन्धी धारणा को विशेष बल मिला जो उतरोत्तर विकसित होती चली गई ।

#### 1.1.4 यथार्थ और यथार्थवाद

साहित्य मानव जीवन के विकास में, विघटन में, बाह्य एवं आन्तरिक परिवेश में जो जैसा है, वैसा ही वर्णन करना यथार्थवाद कहलाता है । इसमें हमारी विशेषताओं एवं क्रूरताओं की अपेक्षा नहीं की जाती । स्पष्टतः माना जा सकता है कि यह आदर्शवाद से विपरीत है जिसमें केवल आदर्श की स्थापना मुख्य होती है, परन्तु यथार्थवाद में जगत का सत्य चित्रण होता है । इसलिए यथार्थवाद समाज में व्यक्ति के संघर्षों, उसकी सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक स्थितियों का सत्य चित्रण ही यथार्थवाद है ।

पश्चिमी भारत में यथार्थ से सम्बन्धित विवेचन दो रूपों में मिलता है । एक ओर जहाँ वर्कले दार्शनिक भूमि के आधार पर यथार्थ का अस्तित्व मानसिक स्तर मानता है, वहीं दूसरी ओर यथार्थवादी दार्शनिकों का मत इसके विपरीत यह प्रमाणित करने का रहा है कि बाह्य जगत व बाहरी पदार्थों का अस्तित्व मन से स्वतन्त्र अपनी वस्तुगत स्थिति में यथार्थ है । मूलतः यथार्थवादी रचनाकार और दार्शनिक, दोनों यह मानते हैं कि बाहरी विश्व का अस्तित्व मन से अलग एक ठोस वस्तुगत अस्तित्व पर टिका है । साहित्य का सम्बंध भी इसी बाह्य जगत और उसके विभिन्न रूपों से है । साहित्य एवं कला के क्षेत्र में यथार्थ सम्बन्धी धारणा के स्पष्टीकरण के लिए जन्स्ट फिशर का आग्रह ध्यान में रखना आवश्यक है । उनका अभिमत है कि दुर्भाग्यवश कला के क्षेत्र में यथार्थ सम्बन्धी धारणा बहुत उदार और अस्पष्ट है । जहाँ कभी यथार्थ एक दृष्टिकोण बन जाता है और कभी शैली या पद्धति । फिशर का अभिमत है कि यदि हम यथार्थ को एक पद्धति के रूप में मान्यता दे तो

पायेंगे कि अमूर्त कला या उस तरह की कुछ वस्तुओं को छोड़कर वास्तव में सारी कला यथार्थ है ।

अतः फिशर के अनुरूप यथार्थ को चित्रण की एक विशिष्ट पद्धति के रूप में स्वीकारना अधिक व्यावहारिक तथा उपयोगी सिद्ध होगा, किन्तु यथार्थ सम्बन्धी फिशर के दृष्टिकोण को समग्रतः स्वीकार करना इसलिए उचित नहीं है कि उन्होंने कला के तहत यथार्थ बोध की रूपरेखा को एकदम सामान्य बना दिया है। कला के अन्तर्गत स्थान पाने वाला यथार्थ बाहरी यथार्थ से विशिष्ट होकर भी अन्ततः उसी का अविच्छिन्न भाग है । जहाँ तक यथार्थ को केवल एक पद्धति मानने की बात है तो प्रायः सभी विचारकों ने इसे दोनों रूपों में स्वीकार किया है । मूलतः यथार्थ कोई रचना पद्धति न होकर रचना दृष्टि ही है । यथार्थ की अभिव्यक्ति विभिन्न पद्धतियों एवं शिल्पों के माध्यम से रचनाओं में हो सकती है लेकिन इसकी वास्तविक पहचान रचना दृष्टि से ही सम्यक है । साहित्य के पारिभाषिक शब्दों के अपने कोश में शिटले यथार्थवादी धारणा को स्पष्ट करते हुए लिखता है- “यथार्थ चित्रण को अधिक समर्थपूर्ण तथा प्रभावपूर्ण बनाने हेतु वस्तुस्थिति के प्रत्येक पक्ष को वास्तविक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास है ।”<sup>1</sup>

कला, दर्शन और साहित्य में यथार्थ की परम्परा एक लम्बे समय से अनवरत गतिशील रही है । जो समय-समय पर विद्वान विचारकों के मतों से परिवर्तित होती हुई पुष्ट बनती गई ।

### 1.1.5 यथार्थवाद और मानव जीवन

यथार्थवाद वस्तु जगत की प्रतिकृति नहीं वस्तु सम्बन्धी दृष्टा की धारणा है । यह धारणा दृष्टा के मन में वस्तु जगत को देश और काल सम्बन्धी सीमाओं के ऊपर उठाकर बनती है । वस्तु जगत या जीवन सम्बन्धी छाप अथवा धारणा, दृष्टा की चेतना ग्रहण करती है और उस चेतना के मूल में दृष्टा अपने व्यक्तित्व के प्रकाश में जीवन सम्बन्धी एक धारणा बनाता है और

---

1. शिवकुमार मिश्र, यथार्थवाद, दि मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड, दिल्ली, 1983, पृ० 4

उस धारणा के आधार पर जीवन के चयन किये गये अवयव को तदानुसार पुनर्गठित कर, उन्हें एक व्यवस्थित रूप देता है, इस प्रक्रिया द्वारा यथार्थवादी साहित्यकार अव्यवस्थित, अनिश्चित लक्ष्यहीन मानव जीवन को सुनिश्चित रूप तथा नये अर्थ प्रदान करता है ।<sup>1</sup>

अपने सहज रूप में मानव जीवन शक्ति और दुर्बलता, महत्ता एवं लघुता और स्वरूपता का संधान है । इन विविध रूपों में ही वह यथार्थ है। यदि 'यथार्थवाद' का शाब्दिक अर्थ लिया जाये तो इसके अन्तर्गत वे सभी रचनायें आ जायेंगी जिनमें वास्तविक जीवन के उच्च एवं निम्न पक्षों का यथातथ्य चित्रण हो । वास्तविक जीवन में बाह्य परिस्थितियों एवं क्रिया कलापों के साथ-साथ आन्तरिक भावनाओं, विचारों, आदर्शों, कल्पनाओं एवं स्वप्नों की भी सत्ता है। उनके द्वारा भी जीवन अभिव्यक्त होता है । अतएव व्यापक अर्थ में यथार्थवादी रचनाएँ मनुष्य के बाह्य एवं आन्तरिक दोनों ही सत्ताओं के चित्रण का लक्ष्य रखकर चलेंगी । मनुष्य भावुक भी होता है, आदर्शवादी भी होता है और यदि उसके चरित्र के इन पक्षों का सहज, स्वाभाविक एवं मानव सुलभ वर्णन हो तो वह यथार्थ की परिधि में रहेगा ।"<sup>2</sup>

कहा जा सकता है कि मानव जीवन सुख और दुःख, सुन्दरता और कुरूपता के ताने-बाने से बना है । जीवन के कुरूप पक्ष को छोड़कर केवल सुन्दर पक्ष की चर्चा करते हुए यथार्थवादी लेखक अपने वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता है । वह सही अर्थों में यथार्थवादी तभी माना जा सकता है जबकि वह जीवन की विविध स्थितियों का निरपेक्ष भाव से वर्णन करे । सहजता और स्वाभाविकता यथार्थ के दो प्रमुख स्तम्भ हैं । आडम्बरयुक्त जीवन यथार्थ के विषय क्षेत्र से बहुत दूर होता है ।

- 
1. शशिभूषण सिंहल, हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ, प्रेम प्रकाशन मन्दिर, दिल्ली, संस्करण-2006, पृ० 16
  2. शिवनारायण श्रीवास्तव, हिन्दी उपन्यास : ऐतिहासिक अध्ययन, पृ० 473



### 1.1.6 यथार्थवाद एवं सामाजिक समस्याओं का चित्रण

यथार्थवाद समाज की प्रमुख एवं ज्वलंत समस्याओं को ही अपने चित्रण के लिए चुनता है और समकालीन मानवीय घुटन, पीड़ाओं आदि के यथार्थ चित्रण में ही उसकी लेखकीय स्थिति सुदृढ़ रहती है। यथार्थ की दृष्टि तथ्यात्मक है तथा विज्ञान पर आधारित होती है और इन्हीं तथ्यों पर अन्वेषण करना यथार्थवाद की सबसे बड़ी शर्त एवं माँग है। वह चाहता है लेखक बिना किसी भय, संकोच एवं पक्षपातपूर्ण दृष्टि से अपने सृष्टि के सादृश्य से प्राप्त अनुभव एवं अपने चारों ओर के परिवेश का ईमानदारी के साथ विवरण प्रस्तुत करें। यथार्थवाद ने कला का सम्बन्ध विज्ञान से स्थापित किया है और उसे विश्लेषण शक्ति से विभूषित किया है। यथार्थवाद कट्टर सामाजिक व्यवस्थाओं, रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासों के प्रति अनास्था का भाव प्रकट करता है। यथार्थवाद की सीमायें केवल उच्चवर्गीय लोगों तक ही सीमित नहीं हैं बल्कि वह मध्यमवर्गीय और निम्नवर्गीय व्यक्तियों को समान रूप से अपने चित्रण का आधार बनाता है।<sup>1</sup>

यथार्थवाद सत्य को देखने वाली आँख है फिर सत्य चाहे कितना ही कुरूप और घिनौना क्यों न हो? जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जहाँ यथार्थवाद की पहुँच न हो। समाज में विद्यमान निर्धन और मध्यमवर्गीय जीवन की कटुतायें और जटिलतायें महत्त्वपूर्ण होते हुए भी स्वयं प्रकाश में नहीं आ पाती। इस वर्ग की जटिलतायें एवं कट्टरताएँ जब यथार्थवादी लेखक अपने साहित्य के माध्यम से उभारता है तो वह एक बहुत बड़े समाज को प्रभावित करती है। अतः कहा जा सकता है कि यथार्थवाद सत्य की खोज करता है फिर सत्य कितनी भी गन्दगी में लिपटा हुआ क्यों न हो। उसे उस गन्दगी से निकालकर समाज के समक्ष प्रस्तुत करना यथार्थवाद का प्रमुख उद्देश्य है।

---

1. सुरेश सिन्हा, हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1967, पृ० 23

### 1.1.7 यथार्थ के विविध प्रकार

साहित्यकार समाज के यथार्थ रूप को अपने साहित्य में प्रतिबिम्बित करता है । साहित्य यदि एक सामाजिक संस्था है तो साहित्यकार एक सामाजिक प्राणी । साहित्यकार की कृतियाँ सामाजिक एवं उसके परिवेश को प्रभावित करती है । समाज के सभी पक्षों यथा- राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक आदि का वास्तविक चित्रण कथा साहित्य एवं उपन्यास साहित्य के अन्तर्गत सशक्त रूप में मिलता है । एक सशक्त एवं प्रबुद्ध उपन्यासकार समाज के इन्हीं विभिन्न सोपानों की कसौटी पर यथार्थ का चित्रण करता है । साहित्य के अन्तर्गत आने वाले यथार्थ के विभिन्न सोपानों का वर्णन इस प्रकार है -

#### 1.1.7.1 सामाजिक यथार्थ

सामाजिक यथार्थ समाज की सम्पूर्ण वस्तुस्थिति का, चाहे वह किसी भी रूप में विद्यमान है, वास्तविक बोध है । वास्तविकता का यह बोध ज्ञान की उस आधारशिला पर प्राप्त होता है । जिस पर समाज की नींव टिकी होती है। सामाजिक यथार्थ चित्रण किसी सामाजिक प्राणी का भी हो सकता है और समाज की किसी घटना का भी, जिससे समाज प्रभावित हो । सामाजिक यथार्थ में समाज के सूक्ष्म तत्व का भी विवेचन होता है ।

व्यक्ति, परिवार एवं वर्गों के सामंजस्य से ही समाज का निर्माण होता है । इनके बिना समाज का अपना कोई अस्तित्व नहीं माना जा सकता । अतः समाज के संगठित तत्वों के रूप में स्थापित इन इकाइयों का चित्रण भी सामाजिक यथार्थ साहित्य में समाज की वास्तविक स्थिति का बोध कराता है, जिसका निर्माण व्यक्ति एवं समाज के मिले-जुले परिवेश के बहुआयामी संघर्ष से होता है । साहित्य व्यक्ति से समाज का सम्बन्ध निर्धारित करता है । साहित्य के माध्यम से व्यक्ति समाज में अपनी स्थिति एवं समाज की व्यवस्था की स्थापना में पूर्ण रूप से योगदान देता है ।

लालजी रामशुक्ल सामाजिक यथार्थ के विषय में लिखते हैं- “सामाजिक यथार्थ से तात्पर्य ऐसे चित्र से है जिसमें रचनाकार वास्तविक घटनाओं को

ज्यों-का-त्यों प्रस्तुत करता है ताकि पाठक समाज में होने वाले विभिन्न व्यापारों के औचित्य-अनौचित्य सफलतापूर्वक समझ सकें और एक आदर्श समाज की ओर प्रवृत्त हो सकें।”<sup>1</sup>

### 1.1.7.2 राजनैतिक यथार्थ

राजनीति प्रत्येक युग को प्रभावित करती रहती है। आधुनिक युग के हर क्षेत्र में राजनीति का बोलबाला है। धर्म, शिक्षा, समाज के साथ-साथ साहित्य के क्षेत्र में भी राजनीतिकरण अपने पाँव पसार रहा है। साहित्यकार की संवेदनशीलता उसे साहित्य में राजनीति से जुड़े कटु सत्य को प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित करती है। वर्तमान युग में प्रत्येक राजनीति दल अपनी स्वार्थपूर्ति में लगा हुआ है। आज जनता के दुःखों से उसे कोई सरोकार नहीं। ऐसा लगता है कि सत्ता के लोभी नेताओं ने अपनी संवेदनाओं को गहरी खाई में धकेल दिया है। आलिशान बंगलों में रहना और शानौशौकत का जीवन व्यतीत करना ही राजनेताओं का एकमात्र आदर्श बन चुका है। बड़े-बड़े वायदों से आम जनता को छलना उनका प्रिय खेल बन चुका है। प्रजातन्त्र प्रणाली में हर पाँच वर्ष के ऐसे स्वार्थी नेताओं को हरा दिया जाता है, जो अपने वायदों को भूल जाते हैं, किन्तु जो नये नेता चुने जाते हैं, उनका भी कोई दीन-ईमान नहीं होता।

“राजनीतिक सत्ता प्राप्त व्यक्तियों के द्वारा अपने साथियों या समर्थकों को अनुचित लाभ पहुँचाना या स्वयं अपने स्वार्थ के लिए अनेक पद और शक्ति का दुरुपयोग करना आदि राजनीतिक भ्रष्टाचार में आते हैं।”<sup>2</sup>

### 1.1.7.3 धार्मिक यथार्थ

धर्म भारतीय समाज का मूल तत्त्व है। धर्म का सम्बन्ध पवित्रता के साथ है लेकिन आधुनिक युग में धर्म की आड़ में कुछ शरारती तत्व अनैतिक कार्य करने में लगे हुए हैं। पुजारी और महन्त विलासिता का जीवन व्यतीत

1. लालजी राम शुक्ल, सरल मनोविज्ञान, पृ० 2

2. मुहम्मद फरोदुद्दीन, राही मासूम राजा के उपन्यासों का समाज शास्त्रीय अध्ययन, पृ० 129

कर रहे हैं । मन्दिरों में ईश्वर के भजन के स्थान पर अनैतिक कार्यों का बोलबाला है ।

“पुजारियों का, महन्तों का और धर्मगुरुओं का जीवन भयानक विलासिता से भरा हुआ है । वे मंदिरों की आड़ में जघन्य से जघन्य कर्म करते नहीं शर्माते । ईश्वर को गाना सुनाकर खुश करने के लिए उन्हें वेश्याएँ चाहिए । इस बहाने से वे अपनी राक्षसी कामना को पूर्ण करते हैं और अपने जीवन को विलास-वासना और पतन के गहरे गड्ढे में डाल देते हैं, तिस पर भी हिन्दू-समाज के लिए वह पूज्य हैं, माननीय हैं और देवता तुल्य हैं क्योंकि वे पुजारी हैं, महन्त हैं और धर्म गुरु हैं ।”<sup>1</sup>

प्राचीनकाल में धर्म मोक्ष प्राप्ति का साधन माना जाता है परन्तु वर्तमान समय में धर्म जादू-टोनों तथा तंत्र-मंत्र का पर्याय बन चुका है। धार्मिक क्षेत्र में आई कुरीतियों के कारण आम आदमी की धर्म के प्रति आस्था अनास्था में बदल गई है । धर्म पर अपना सब कुछ न्यौछावर करने वाले लोग ही अपने स्वार्थ पूर्ति के लिए धर्म को बदल रहे हैं । धार्मिक क्षेत्र में आई इन्हीं कुरीतियों का साहित्य के माध्यम से वास्तविक चित्रण करना धार्मिक यथार्थ कहलाता है ।

#### 1.1.7.4 आर्थिक यथार्थ

मानव जीवन में अर्थ का अति महत्वपूर्ण स्थान है । यदि कहा जाए कि प्राणों के बाद अर्थ सबसे महत्वपूर्ण उपादान है तो गलत न होगा । अर्थ ही मानव जीवन को अर्थवान बनाता है । प्राचीन काल में मानव की प्रतिष्ठा उसके गुणों के आधार पर टिकी होती थी, परन्तु वर्तमान युग में वही व्यक्ति श्रेष्ठ माना जाता है जिसके पास धन है। धन की कमी मनुष्य के जीवन में अनेक समस्याएँ खड़ी कर देती है। आज भारत देश में गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा, वेश्यावृत्ति जैसी अनेक समस्याएँ हैं जिसका कारण अर्थ की कमी का होना है। भारतीय अर्थव्यवस्था की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि यहाँ अमीर

---

1. सत्य प्रकाश मिश्र (सं०), प्रेमचन्द के श्रेष्ठ निबंध, पृ० 70

आदमी अधिक अमीर और गरीब आदमी अधिक गरीब होता जा रहा है। अमीर-गरीब के बीच की खाई गहरी होती जा रही है। आज का साहित्यकार ऐसी व्यवस्था का पक्षधर है जिसमें अमीर-गरीब सब समान हों। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था का समर्थक कार्ल मार्क्स को माना गया है, जिसने अपने विचारों से दुनियाभर के विद्वानों को प्रभावित किया। मार्क्स की साम्यवादी नीति ने साहित्यकारों को भी अत्यधिक प्रभावित किया।

साहित्य कोश में कहा गया है - “साम्यवाद समाज में शोषक और शोषित, बुर्जुआ और सर्वहारा, पूँजीपति और श्रमिक इन परस्पर दो वर्गों की सत्ता मानता है। साम्यवाद की स्थापना शोषित वर्ग के लिए हर संभव उपाय से शोषित वर्ग के हाथ मजबूत करने चाहिए। इस कार्य में सहयोग देने वाला क्रिया-कलाप प्रतिक्रियावादी है। काव्य पर भी यही नियम लागू होता है।”<sup>1</sup>

हिन्दी साहित्य के प्रगतिशील साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में शोषित वर्ग पर होने वाले अत्याचारों का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। वर्तमान युग का सजग साहित्यकार भी अपनी रचनाओं में आर्थिक असमानता का शिकार हुए लोगों का वास्तविक चित्रण प्रस्तुत करने की कोशिश में लगा हुआ है, यही आर्थिक यथार्थ है।

#### 1.1.7.5 मनोवैज्ञानिक यथार्थ

मनुष्य का व्यक्तित्व दो प्रकार का होता है- बाहरी व्यक्तित्व व आन्तरिक व्यक्तित्व। सामान्यतः हम व्यक्ति के बाहरी व्यक्ति को देखते हैं व समझते हैं जो कि व्यक्ति के आन्तरिक व्यक्तित्व से बिल्कुल अलग होता है। साहित्य केवल बाहरी व्यक्तित्व को चित्रित करके अपने उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकता है उसमें आन्तरिक व्यक्तित्व (मनोवैज्ञानिक यथार्थ) का प्रस्तुतीकरण भी आवश्यक होता है। अंग्रेजी साहित्य में इसको “Psychological Realism” कहा जाता है।

---

1. धीरेन्द्र वर्मा (सं०), हिन्दी साहित्य कोश, प्रयाग, प्रथम संस्करण, 1965, पृ० 844

इस प्रकार वह यथार्थ जिसमें व्यक्ति के आन्तरिक (मानसिक) भावों, विचारों, विकारों आदि का वर्णन किया जाए उसको हम मनोवैज्ञानिक यथार्थ कहते हैं ।

आज पाश्चात्य साहित्य जगत में व्यक्तिवादी मनोवैज्ञानिक विचारधारा प्रमुख रूप से आ रही है । इस कार्य में फ्रॉयड, एडलर आदि ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्होंने व्यक्ति के अन्तर्मन की विकृतियाँ, प्रमाद, कुण्ठाओं तथा सामान्य-असामान्य व्यवहार तथा यौन-सम्बन्धों को अपने साहित्य में विशेष स्थान दिया है । भारतीय मनोविज्ञान के क्षेत्र में प्रेमचंद, जैनेंद्र, इलाचन्द्र जोशी एवं अज्ञेय आदि ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । अतः मनोवैज्ञानिक यथार्थ से अभिप्रायः उन मानसिक परिस्थितियों से जो एक विशिष्ट काल में एक व्यक्ति को अप्रत्याशित आचरण के लिए बाध्य कर देती हैं ।

#### 1.1.7.6 सांस्कृतिक यथार्थ

हिन्दी साहित्य कोश में संस्कृति को सामाजिक प्रथा का पर्याय कहा गया है ।<sup>1</sup>

संस्कृति शब्द रहन-सहन और आपारगत परम्परा आदि अर्थों में लिया गया है । संस्कृति का संबंध मानव की मानस भूमि से होता है कि प्रत्येक समाज की अपनी संस्कृति होती है । संस्कृति किसी देश या समाज के विभिन्न जीवन व्यापारों, सामाजिक सम्बन्धों एवं मानवीय दृष्टि से प्रेरणादायक तत्वों की सृष्टि को कहते हैं । संस्कृति साहित्य के समान समाज की धरती पर उगने वाला फूल है, जो खुद सुगन्धित है और दूसरों को भी सुगन्धित करता है। संस्कृति रूपी भित्ति के आधार पर ही उच्च साहित्य की सृजन संभव है। संस्कृति मानव के जीवन एवं व्यक्तित्व को संपुष्ट करती है। सहिष्णुता एवं समन्वय की भावना भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण पक्ष है ।

---

1. धीरेन्द्र वर्मा (सं०), हिन्दी साहित्य कोश, प्रयाग, प्रथम संस्करण, 1965, पृ० 568

### 1.1.7.7 पारिवारिक यथार्थ :

परिवार के निर्माण का मूल आधार भावनात्मक होता है और उसकी मूल प्रवृत्तियाँ-प्रेम, वात्सल्य, श्रद्धा, सहयोग, सुरक्षा और संरक्षण है। व्यक्ति को समाज से, समाज को व्यक्ति से बांधने का तथा एक दूसरे के प्रति अपना दायित्व समझने-समझाने का महत्वपूर्ण कार्य एक परिवार द्वारा ही सम्भव है। यदि हम साहित्य में पारिवारिक यथार्थ को स्थान नहीं देंगे तो हमारा साहित्य इतना प्रभावी नहीं बनेगा जितना साहित्य को परिवार के साथ जोड़ने से बनता है। इसलिए पारिवारिक यथार्थ को मूल रूप से चित्रित करना आवश्यक है। परिवार ही समाज की मूल केन्द्रीय इकाई है।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर हम कह सकते हैं कि समाज के निर्माण में व्यक्ति, परिवार और वर्ग की सक्रियता आवश्यक होती है। साहित्य और समाज परस्पर साथ-साथ चलते हैं। दोनों का एक-दूसरे से अलग अस्तित्व संभव नहीं है। ठीक उसी प्रकार साहित्य और यथार्थ को भी अलग नहीं किया जा सकता। जो साहित्य यथार्थ के जितना अधिक निकट होता है वह उतना ही प्रभावशाली होता है। समाज की परिस्थितियों, सफलताओं, दुर्बलताओं का वास्तविक प्रस्तुतीकरण ही यथार्थ कहलाता है। सामाजिक यथार्थ में मानव मन की विक्षिप्ताओं का चित्रण होता है और उसके उल्लासपूर्ण क्षणों का भी। अंततः यह कहा जा सकता है कि साहित्य व यथार्थ एक-दूसरे की जीवनधारा है। किसी एक अभाव में दूसरे का जीवन संभव नहीं है। जो साहित्यकार अपने साहित्य में यथार्थ को जितना अधिक महत्व देता है उसका साहित्य उतना ही अधिक परिष्कृत होता है।

### 1.2 मध्यमवर्ग का सैद्धान्तिक स्वरूप

हमारे समाज में विभिन्न धर्मों, जातियों, सम्प्रदायों तथा वर्गों के लोग रहते हैं। अपने-अपने पारिवारिक माहौल और वातावरण के अनुसार ही वे अपना जीवन व्यतीत करते हैं। उनके जीवन के विविध पक्ष होते हैं। यदि हम वर्गों की बात करें तो हमारे समाज को आर्थिक आधार पर उच्च, मध्यम और निम्न तीन वर्गों में विभक्त किया गया है। इन सब वर्गों का

अपना-अपना जीवन स्तर होता है और सोचने की शक्ति होती है । वर्गों का निर्माण विभिन्न कारणों से होता है जिनके स्वरूप को समझने के लिए हमें समाज के विभिन्न पक्षों को गहराई से समझना होगा । हमें यहाँ पर समाज के तीन वर्गों में से माध्यमवर्ग के स्वरूप को समझना भी आवश्यक है क्योंकि यह संवदेनशील वर्ग है यह वर्ग न तो नीचे जा सकता है और न ही इसके अन्दर इतना सामर्थ्य बन पाता है जिससे यह उच्च वर्ग में शामिल हो सके । हमें मध्यमवर्ग को समझने और जानने के लिए उसके सैद्धान्तिक स्वरूप के बारे में ज्ञान प्राप्त करना अति आवश्यक है ।

### 1.2.1 वर्ग का स्वरूप

वर्ग किसी समाज का आवश्यक एवं अनिवार्य अंग होता है जिसका निर्माण उस समाज के श्रम, उत्पादन तथा वितरण के साधनों द्वारा होता है । मानव समाज की कल्पना के साथ ही हमारे मन में वर्गों का स्वरूप स्वतः जागृत हो जाता है । इन वर्गों को दूसरे शब्दों में, सामाजिक श्रेणीकरण का विशिष्ट रूप कहा जा सकता है। समाजशास्त्रियों ने वर्गों के निर्माण की प्रक्रिया को विभिन्न रूपों में देखा है । उनकी दृष्टि में श्रेणीकरण की प्रक्रिया के द्वारा समाज अपने सदस्यों के स्थान का निर्धारण करता है । मैकाइवर तथा पेज जैसे समाजशास्त्रियों ने 'वर्ग' की परिभाषा करते हुए कहा है, "किसी वर्ग का अर्थ ऐसी श्रेणी तथा प्रकार से है जिसके अन्तर्गत व्यक्ति अथवा व्यक्ति समूह आते हों ।"<sup>1</sup> रूसी क्रान्ति के प्रणेता एवं महान विचारक लेनिन के अनुसार, "वर्ग व्यक्तियों के बड़े-बड़े दल होते हैं। ये दल एक-दूसरे से भिन्न होते हैं जिनकी भिन्नता का आधार व्यक्ति की सामाजिक उत्पादन पद्धति के अनुसार निर्धारित किया जाता है। इस अन्तर को उत्पादन के साधनों से ज्ञात कर सकते हैं । यह अन्तर कुछ तो श्रमजीवियों के संगठन के कार्यों पर आधारित होता है और कुछ सामाजिक धन के अर्जित करने के उपायों से भी ज्ञात किया

---

1. आर. एम. मैकाइवर तथा सी.एच. पेज: सोसाइटी; मैकमिलन कम्पनी लिमिटेड- लन्दन, संस्करण-1957, पृ. 348



किया जा सकता है।”<sup>1</sup> प्रसिद्ध विद्वान् हेनरी ए० मेस का मत है- “एक सामाजिक वर्ग मनुष्यों का ऐसा समुदाय है, जो अपने कतिपय ऐसे सामान्य गुणों और व्यवहार के कतिपय सामान्य तरीकों के विषय में सचेत रहता है, जो उन व्यक्तियों को दूसरे विभिन्न गुणों तथा व्यवहार वाले सामाजिक वर्गों के सदस्यों से पृथक् करते हैं। किसी सामाजिक वर्ग-विशेष का सदस्य बनने हेतु एक व्यक्ति के लिए यह अनिवार्य है कि वह स्वयं को उस रूप में अनुभव करे एवं दूसरों द्वारा भी वह इस रूप में अनुभव किया जाए।”<sup>2</sup>

इस प्रकार उक्त समाजशास्त्रियों की दृष्टि में वर्ग का निर्णय व्यक्ति या समूह के आर्थिक एवं सामाजिक स्तरों की भिन्नता पर आधारित होता है। इसलिए एक विशिष्ट प्रकार के आर्थिक और सामाजिक स्तर वाले व्यक्ति एक समूह के अन्तर्गत आबद्ध होकर एक विशिष्ट वर्ग का निर्माण करते हैं। किसी भी वर्ग के द्वारा किए जाने वाले कार्यों और व्यवहारों से उस वर्ग की पहचान हो जाती है तथा उनका जीवन-स्तर और रहन-सहन भी दूसरे वर्गों से अलग होता है।

### 1.2.2 वर्ग और समाज

वर्ग का स्वरूप किस प्रकार से बनता है तथा वर्गों का निर्माण कैसे होता है? यह हमने समाज-शास्त्रियों द्वारा दी गई परिभाषाओं से जाना है। अब हमें यह जानना है कि जो वर्गों का निर्माण करते हैं, उनकी रूपरेखा क्या होनी चाहिए? यह जानना भी बहुत आवश्यक है क्योंकि इन विशेष व्यक्तियों की प्रवृत्तियों तथा उनकी सामाजिक और आर्थिक धारणाओं के अनुसार ही उनका विशिष्ट वर्ग बनता है। समाजशास्त्रियों ने विशिष्ट वर्गों के व्यक्तियों की

- 
1. फन्डामेन्टल्स ऑफ मार्क्सिज्म-लेनिनिज्म-मैन्युल, फारेन लैंग्युजेज पब्लिशिंग हाउस-मास्को, संस्करण-1963, पृ० 150
  2. A social class is a group of persons conscious of certain common traits and of certain common ways of behaviour which distinguish them from members of others traits and other ways of behaviour. To be a member of a social class and individual must both feel himself to be so and must be felt by others to be so. 'Social Studies' (1942); p. 85-86

परिभाषा और सीमाओं को निर्दिष्ट करने का प्रयत्न भी किया है। मिल्टन एम. जोरडन के अनुसार, “धन, आय, व्यावसायिक स्तर, सामुदायिक शक्ति, दल की विशिष्टता, उपभोग का स्तर और पारिवारिक पृष्ठभूमि”<sup>1</sup> व्यक्तियों को उनके वर्गों में प्रतिष्ठित करने वाले आवश्यक तत्त्व हैं। इसी से मिलती-जुलती परिभाषा इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका में भी है जिसमें किसी विशिष्ट वर्ग के व्यक्ति का स्तर “उसकी आय, सम्पत्ति, जीविका, रहन-सहन का स्तर, शिक्षा, उसकी व्यक्तिगत शक्ति जिसके आधार पर वह समाज के अन्य व्यक्तियों के बीच अपनी विशिष्ट स्थिति का निर्माण करता है”<sup>2</sup> के द्वारा जाना जाता है। ल्यूक एवरसोल जैसे समाजशास्त्री ने व्यक्ति के सामाजिक स्तर का निर्माण करने वाले आवश्यक तत्वों में, ‘सम्पत्ति, आय, वंश-परम्परा और वैयक्तिक विशेषताओं को’<sup>3</sup> मान्यता दी है।

इस प्रकार विद्वानों द्वारा दिए गए विभिन्न मतों से हम निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि वर्ग किसी समाज का आवश्यक एवं अनिवार्य अंग होता है जिसका निर्माण उस समाज के श्रम, उत्पादन तथा वितरण के साधनों द्वारा होता है। इसके साथ मनुष्य की वंश-परम्परा, शिक्षा, आय, रहन-सहन का स्तर तथा व्यक्ति की प्रतिभा भी उसे विशिष्ट वर्ग का व्यक्ति प्रतिष्ठित करने में सहायक होती है।

### 1.2.3 वर्ग भावना का विकास

वर्ग और उसके सदस्यों के स्वरूप के उपरान्त ऐतिहासिक क्रमिक विकास की दृष्टि से भी वर्ग के स्वरूप पर विचार कर लेना आवश्यक है। आधुनिक युग में वर्ग की भावना को एक विशिष्ट सामाजिक प्रक्रिया का रूप देने का श्रेय महान चिन्तक और विचारक कार्ल-माक्स को है। माक्स के अनुसार

- 
1. मिल्टन एम. जोरडन: सोशल क्लास इन अमेरिकन सोसाइटी-ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रेस, सोशियोलोजिकल सीरिज, संस्करण-1948, पृ. 3
  2. इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका-भाग पांच, संस्करण-1960
  3. ल्यूक एवरसोल, अमेरिकन सोसाइटी, हिलबुक कम्पनी, टोरेन्टो-लन्दन, संस्करण-1955, पृ. 262

आदिम समाज में वर्ग-भावना या श्रेणी भेद नहीं था, क्योंकि उत्पादन इतना कम होता था कि मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति ही कर सकते थे, बचाना उनके लिए असम्भव बात थी। धीरे-धीरे उत्पादन की वृद्धि के साथ लोगों ने सम्पत्ति बनाना प्रारम्भ किया और इस प्रकार वैयक्तिक सम्पत्ति की भावना को समाज में बढ़ावा मिला। व्यक्तिगत सम्पत्ति की भावना, जैसे-जैसे प्राणियों में बढ़ती गई व्यक्तिगत सम्पत्ति की रक्षा के लिए व्यक्तिगत संघर्ष हुए और इस प्रकार से समूहगत हितों की रक्षा के लिए वर्ग-संघर्ष प्रारम्भ हुआ। वर्ग-संघर्ष की इस मूल भावना को शाश्वत मानकर कार्ल-माक्स ने कहा है, “अभी तक घटित सभी समाजों का इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास है।”<sup>1</sup> यद्यपि माक्स से पहले सेन्ट साइमोन्ट्स तथा ल्यूक ब्लैक जैसे समाजशास्त्रियों ने इस वर्ग-संघर्ष की भावना के विवेचन का प्रयास किया था, परन्तु वह वैज्ञानिक नहीं था। “वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्त के प्रतिपादन का श्रेय कार्ल-माक्स और फ्रेडरिक एंगिल्स को है और इनमें से भी प्रमुख रूप से कार्ल-माक्स को। इन दोनों लेखकों ने 1849 में ‘दास कैपिटल’ के अन्तर्गत कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो में इस सिद्धान्त का उल्लेख किया था।”<sup>2</sup>

अपनी अतलदर्शी प्रतिभा के बल पर माक्स ने न केवल वर्ग-संघर्ष की भावना को एक वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया अपितु समाज के विभिन्न वर्गों का नामकरण करते हुए उसने प्रमुख रूप से तीन वर्गों की कल्पना की है। पहले वर्ग को उसने ‘बार्जुआ’ या ‘शोषक वर्ग’ कहा और दूसरे को ‘पोलेटेरियर’ या ‘शोषित वर्ग’ की संज्ञा दी। शोषक और शोषित वर्ग के संघर्ष से ही कालांतर में एक तीसरे वर्ग का जन्म हुआ जिसे माक्स ने ‘मध्यमवर्ग’ कहा। इस ‘मध्यमवर्ग’ का इतिहास औद्योगिक क्रान्ति से सीधा जुड़ा हुआ है जैसा कि एफ.सी. पाम महोदय लिखते हैं, “सन् 1812 तक मध्यमवर्ग की संज्ञा किसी समुदाय-विशेष की नहीं थी। औद्योगिक विकास

- 
1. मेनिफेस्टो आफ दि कम्युनिस्ट पार्टी, माक्स एंगिल्स, फारेन लैंग्वुजेज पब्लिशिंग हाउस-मास्को, संस्करण : 1949, पृ. 43
  2. इनसाइक्लोपीडिया आफ दि सोशल साइन्सेज, पृ. 538

तथा नगरीय सभ्यता के बढ़ते स्वरूप ने पूँजीपति तथा श्रमिक के बीच एक एक नये वर्ग को उत्पन्न किया ।”<sup>1</sup> मार्क्स का ऐसा विश्वास था कि औद्योगिक क्रान्ति से उद्भूत यह मध्यमवर्ग कालान्तर में शोषक वर्ग के साथ मिलकर विलुप्त हो जाएगा, पर उसकी यह भविष्यवाणी सत्य न हो सकी और आज हम यह देखते हैं कि विश्व के अधिकांश देशों में यह मध्यमवर्ग शोषित वर्ग में मिलने के स्थान पर अलग स्वतन्त्र वर्ग के रूप में विस्तार पाता जा रहा है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वर्ग भावना का विकास धीरे-धीरे हुआ । आदिकाल में कोई भी वर्ग नहीं था लेकिन मानव ने जब से धन जोड़ना आरंभ किया तब से निरन्तर वर्ग बन रहे हैं। जिसके पास अधिक धन था, वे उच्च वर्ग में आये और जिनके पास धन का अभाव था वे निम्न वर्ग में आये लेकिन जिनके पास धन बस इतनी ही मात्रा में था कि वे अपना गुजारा ही चला सकें, वे मध्यमवर्ग में आये । कार्ल मार्क्स ने भविष्यवाणी की थी कि वह वर्ग औद्योगिक क्रान्ति से उभरा है और कालान्तर में शोषक वर्ग के साथ मिल जाएगा लेकिन ऐसा न हो सका । अब यह वर्ग अलग स्वतंत्र वर्ग के रूप में विस्तार पाता जा रहा है ।

#### 1.2.4 समाज के वर्ग

हमारे समाज में तीन वर्ग माने गये हैं जिनमें उच्चवर्ग, मध्यमवर्ग और निम्नवर्ग हैं ।

##### 1.2.4.1 उच्चवर्ग

जिसके पास हर चीज आवश्यकता से अधिक है.... सामाजिक रूतबा, रूपया-पैसा और जमीन-जायदाद । भावनाओं का यहाँ पर थोड़ा कम महत्व है। उच्चवर्ग में अधिक, बहुत ज्यादा, थोड़ा अधिक, अति उच्च, थोड़ा उच्च इसे भी विभाजित करने की आवश्यकता नहीं है । इनमें कुलीन जिनके पास

---

1. जी. एस. धुरे, कास्ट, क्लास एण्ड ओक्युपेशन, पापुलर बुक डिपो-बम्बई, संस्करण : 1961, पृ० 290

पुराना पैसा है और वे व्यक्ति, जो अपने जीवन काल में ही अमीर बन गए हैं। जैसे उद्यमी, फिल्मी सितारे, शीर्ष एथलीट, प्रमुख पेशेवर आदि आते हैं।

#### 1.2.4.2 निम्नवर्ग

निम्नवर्ग जहाँ आवश्यकता और जरूरत के कम, दूसरे शब्दों में गरीब। अब जो निम्न हैं वो पूरी तरह से निम्न हैं। उन्हें और परिभाषित नहीं किया जा सकता। गरीब, ज्यादा गरीब, भिखारी, गरीबी रेखा से नीचे पलने वाले लोग जिन्हें दो वक्त का खाना भी नसीब नहीं होता। इनमें शारीरिक श्रम कार्यकर्ता और हाथ से कार्य करने वाले मजदूर और बेघर और स्थायी रूप से बेरोजगार आदि आते हैं।

#### 1.2.4.3 मध्यमवर्ग

मध्यम-बीच वाला, ये बीच का वर्ग कई मायने में विशिष्ट भी होता है और कई तरह से कष्टदायक भी। इनके तीन भाग किये जा सकते हैं- उच्च मध्यम जो उच्चवर्ग में जाने के लायक नहीं है। परन्तु जो सदैव कोशिश में लगा रहता है कि किसी तरह ऊपर के वर्ग में पहुँच जाये। मध्यमवर्ग में कहलाना उसे पसन्द नहीं। इस वर्ग का कहलाने में उसे शर्म महसूस होती है। लेकिन यह वर्ग थोड़ी-बहुत कोशिशों से उच्चवर्ग में पहुँच सकता है। पहुँचते भी हैं लोग। मध्य-मध्यमवर्ग, ठीक-ठाक, बीच का। परन्तु निम्न मध्यम मतलब कि थोड़ी-सी कमी या चूक से आदमी गरीबी रेखा के नजदीक पहुँच सकता है। रोज कमाया, रोज खाया। जितनी आवश्यकता है रोटी की, उतनी ही मिल रही है। उससे अधिक चाह करने पर कठिनाईयाँ हो सकती हैं। इसमें ज्यादातर लोग रोज कमाने वाले और छोटी-मोटी नौकरी करने वाले होते हैं।

मध्यमवर्ग में डॉक्टर, इंजीनियर, दन्त चिकित्सक, वकील, बैंकर, कम्पनियों के अधिकारी, वास्तुविद्, कलाकार, लेखक, कवि, कार्यालय के कर्मचारी, शिक्षक और मध्य स्तर के सिविल सेवक, छोटे व्यापार मालिक आदि आते हैं।

इस प्रकार हमारे समाज में तीन वर्ग-उच्च, निम्न और मध्यम हैं। उच्चवर्ग के पास हर प्रकार की सुविधाएँ होती हैं लेकिन भावनाओं की कमी

होती है । निम्नवर्ग के पास धन का अभाव होता है और वे अपना गुजारा बड़ी मुश्किल से चलाते हैं । यहाँ मध्यमवर्ग को भी तीन भागों में बाँटा गया है- उच्च, मध्य, निम्न । इनमें से उच्च मध्यम थोड़े से प्रयासों के बाद उच्चवर्ग में शामिल हो सकता है तथा निम्न मध्यम थोड़ी-सी चूक होने पर निम्नवर्ग में आ सकता है लेकिन मध्य-मध्यम वर्ग के पास इतना ही होता है कि वह रोजमर्रा के खर्चों को ही चला सकता है तथा दिखावे की भावना से अपना जीवन निर्वाह करता है ।

### 1.2.5 मध्यमवर्ग की परिभाषा

अभी तक मध्यमवर्ग को किसी सर्वमान्य परिभाषा में नहीं बाँधा गया है। इसके अनेक कारण हैं- (i) मध्यमवर्ग केवल एक स्तरीय लोगों का वर्ग नहीं है । इसके सदस्य आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से भिन्न धरातलों पर रहते हैं। (ii) विभिन्न देशों में मध्यमवर्ग का उद्भव, विकास और वर्तमान स्थिति भिन्न सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक वातावरण का परिणाम है, इसलिए सामान्यतः किसी एक देश का मध्यमवर्ग दूसरे देश के मध्यमवर्ग जैसा नहीं है। (iii) एक ही देश के दो विद्वान् अपने देश के मध्यमवर्ग की किसी एक परिभाषा से सहमत नहीं होते ।

समाज में मध्यमवर्ग के व्यापक प्रभाव को देखते हुए उसकी सीमित परिभाषा दे पाना निश्चय ही कठिन कार्य है । मध्यमवर्ग की परिभाषा करते हुए विद्वानों ने उसकी विशेषताएँ, दुर्बलताएँ, सीमाएँ सभी का उल्लेख किया है। बुद्धिजीवी के लिए जीवन का मापदण्ड निर्मित कर लेना सदैव कठिन होता है। मध्यमवर्ग एक ऐसा वर्ग है जो मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सभी कारणों से दूसरे वर्गों से भिन्न है ।

### बुखारिन के अनुसार

“वर्ग-मनोविज्ञान या वर्ग-सिद्धान्त तथा वर्ग-चेतना केवल क्षणिक रूचियों पर निर्भर नहीं करती वरन् ये स्थायी और सार्वभौमिक रूचियों व सिद्धान्तों पर आधारित होती हैं ।”<sup>1</sup>

1. रिचार्ड सेन्टर्स: दि साइक्लोजी आफ दी सोशल क्लासेज, पृ० 21

समाज शास्त्र के विश्वकोश ने मध्यमवर्ग को इन शब्दों में व्यक्त किया है -

“मध्यमवर्ग अपनी सीमाओं में उद्योग और व्यापार के, मंज़ली स्थिति के उद्यमकर्ता जैसे शिल्पी और किसान अर्थात् वस्तुओं के छोटे उत्पादक, छोटे दुकानदार और व्यापारी तथा दफ्तरों के कर्मचारियों एवं वेतन भोगी लोगों का समाविष्ट करता है।”<sup>1</sup>

हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार

“पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था ने समाज को इतना जटिल कर दिया है कि एक मध्यमवर्ग की आवश्यकता हुई, जो इस जटिल व्यवस्था के संघटन-सूत्र को संभाल सके। इस वर्ग में नौकरी पेशा, शिक्षक, कलर्क और अन्य साधारण लोग आते हैं। मध्यमवर्ग विशेषतः बुद्धि प्रधान माना गया है और सामाजिक क्रान्ति के प्रायः समस्त विचारों का सर्जन मध्यमवर्ग में ही होता है।”<sup>2</sup>

माक्स ने मध्यमवर्ग के लिए पैटी (रूसी उच्चारण के अनुसार पेती) बुर्जुआ शब्द प्रयुक्त किया है और उसके सम्बन्ध में कहा है- “उन देशों में जहाँ आधुनिक सभ्यता का पूर्ण विकास हो गया है, छोटे बुर्जुआ का एक नया वर्ग बना लिया गया है जो श्रमजीवी और बुर्जुआ समाज के अनुपूरक भाग के रूप में सदा बनता जाता है।”<sup>3</sup>

उपन्यासकार यशपाल के ‘दादा कामरेड’ उपन्यास में मध्यमवर्ग के सम्बन्ध में अनेक विचार व्यक्त हुए हैं -

“मध्यम श्रेणी अनिश्चित स्थिति के लोगों की अद्भूत खिचड़ी है। कुछ लोग मोटरों और शानदार बंगलों का व्यवहार का विनय से अपने आपको इस श्रेणी का अंग बनाते हैं। दूसरे लोग मजदूरों की-सी असहाय स्थिति में रहकर

1. The middle class includes within its ranks the middling producer of goods such as the artisan and farmer, the small shopkeeper, and tradesman and the official and salaried employee; The Encyclopedia of Social Sciences, Vol. I & X, p. 100
2. हिन्दी साहित्य कोश, पृ० 564
3. Manifesto of Communist Party (1955 Edition), p. 100

भी सफेदपोश और शिक्षित होने के बल पर इस श्रेणी का होने का दावा करते हैं । देश की राजनीति और समाज-सुधार की चिंता जितनी इस श्रेणी में रहती है, उतनी न तो अपने विस्तृत स्वार्थों की चिंता में व्यस्त रहने वाली ऊँची श्रेणियों को और न रोटी के टुकड़े की चिंता से कभी मुक्ति न मिल पाने वाली निम्न श्रेणियों को है ।”<sup>1</sup>

प्रसिद्ध लेखक ‘अज्ञेय’ के ‘नदी के द्वीप’ उपन्यास में मध्यमवर्ग के संबंध में एक पात्र के माध्यम से विचार व्यक्त मिलते हैं— मध्यमवर्गीय मापदण्ड है— “साफ-सुथरा घर, बिना झंझट के खाना-सोना, छोटा-सा बैंक-बैलेंस, दिल-बदलाव की साधारण सहूलियतें।”<sup>2</sup>

मध्यमवर्ग के बारे में हनुमन्त नायडू कहते हैं— “उच्चवर्ग के सपने तथा निम्नवर्ग से भी बदतर आय के साधनों के बीच अभावों, रूढ़ियों, निषेधों, कुंठाओं और तनावों में जीने के लिए अभिशप्त वर्ग का नाम इस देश में मध्यमवर्ग है ।”<sup>3</sup>

इन परिभाषाओं के आधार पर देखकर सम्पूर्ण मध्यमवर्ग को लेकर कोई एक सामान्य परिभाषा बनाना सहज कार्य नहीं है । कारण यह है कि मध्यमवर्ग में ही स्तरीकरण इतना प्रमुख है कि मध्यमवर्ग के कुछ सदस्य एक ओर उच्चवर्ग से मुश्किल से पृथक् किए जा सकते हैं, तो दूसरी ओर निम्नवर्ग से उनका बहुत न्यून अन्तर रह जाता है । इसलिए मध्यमवर्ग के तीन भाग माने जाते हैं। 1. उच्च-मध्यमवर्ग 2. मध्य-मध्यमवर्ग 3. निम्न-मध्यमवर्ग । अतः इन सबके लिए मध्यमवर्गी शब्द प्रयुक्त करना होगा । अब हम इन तीनों की अलग-अलग परिभाषा देने का प्रयत्न करते हैं ।

1. यशपाल, दादा कामरेड, पृ० 18

2. अज्ञेय, नदी के द्वीप, पृ० 49

3. सं० ब्रह्मदेव मिश्रः पांडुलिपि (देवेश ठाकुर के व्यक्तित्व-कृतित्व का मूल्यांकन); (भ्रमभंग : कथ्य और शिल्प- हनुमन्त नायडू); संकल्प प्रकाशन-बम्बई, प्रथम संस्करण, जून 1993, पृ० 55



(i) **उच्च-मध्यमवर्ग** - जो निश्चिन्तता एवं निश्चितता से अपने जीवन को कुछ सीमा तक वैभवपूर्ण ढंग से व्यतीत करने में सदा सफल रहता है । इस वर्ग में छोटे उद्योगपति तथा वे शिक्षित व्यक्ति आते हैं जो उद्योग, किसी संस्था या सरकारी विभाग के उच्च पदों पर प्रतिष्ठित हैं ।

(ii) **मध्य-मध्यमवर्ग** - जो सामाजिक सोपान पर चढ़ने के लिए संघर्षशील रहता है और अपनी जीवन की परम आवश्यकताओं को केवल पूरा कर पाता है । इस वर्ग में सरकारी मध्य श्रेणी के पदों पर प्रतिष्ठित, व्यवसायिक, शिक्षित दुकानदार आदि सम्मिलित हैं।

(iii) **निम्न मध्यमवर्ग** - जो दिखावे की भावना से ग्रस्त बड़ी कठिनाई से जीवन-यापन कर पाता है । इसमें शिक्षित बुद्धिजीवी तथा शिल्पी आते हैं, यथा-कलर्क, प्राथमिक पाठशाला के अध्यापक आदि।

उच्च-मध्यमवर्ग और निम्न-मध्यमवर्ग में अन्तर स्पष्ट दिखाई दे जाता है, पर मध्य-मध्यमवर्ग जो एक ओर निम्न मध्यमवर्ग और दूसरी ओर उच्च मध्यमवर्ग से मिलता है, को पृथक् करना कठिन है। मध्य-मध्यमवर्ग की सीमा कहाँ लगाई जाए? यह जटिल समस्या है। यों बहुत कम उपन्यासों में व्यक्ति की ठीक आय का संकेत होता है। आय का संकेत हो भी तो उस पात्र को कौन-से वर्ग में रखा जाए यह निर्णय करने से पूर्व उपन्यास के कथानक का काल देखना पड़ता है । अतः उपन्यासों के अध्ययन और विश्लेषण में हमने मध्यमवर्ग का संश्लिष्ट रूप ही लिया है । इस वर्ग के लोग जागरूक वर्तमान परिस्थितियों से परिचित तथा समस्याओं के मूल कारण को जानने की शक्ति रखते हैं, जिससे उनके अन्दर एक ज्वाला-सी जलती रहती है और वही ज्वाला उनको क्रान्ति करने की प्रेरणा प्रदान करती है ।

इस प्रकार मध्यमवर्ग को तीन श्रेणियों में बाँटा गया है लेकिन फिर इसमें बहुत-सी ऐसी विशेषताएँ जो इसे निम्न मध्यमवर्ग और उच्च मध्यमवर्ग से बिल्कुल अलग करती हैं । इस वर्ग को बुद्धिजीवी श्रेणी में रखा गया है जो हमेशा समाज की चिंता करता है और निरन्तर आगे बढ़ने के बारे में सोचता

रहता है लेकिन परिस्थितियों के अनुसार ही वह अपना जीवन व्यतीत कर पाता है ।

### 1.2.6 विदेशों में मध्यमवर्ग

इंग्लैंड की औद्योगिक क्रान्ति, फ्राँस की राज्य क्रान्ति और रूसी समाजवादी क्रान्ति ने विश्व की आर्थिक व्यवस्था पर काफी प्रभाव डाला है । वर्तमान समाज आर्थिक दृष्टि से तीन वर्ग या तीन श्रेणियों में विभक्त है - उच्चवर्ग, मध्यमवर्ग तथा निम्नवर्ग । उच्च वर्ग तथा निम्नवर्ग शोषक या शोषित तथा पूँजीवादी और श्रमिक के नाम से भी जाने जाते हैं । संसार के सभी पूँजीवादी देशों में उक्त तीनों श्रेणियाँ विद्यमान हैं । शोषित वर्ग जिसे उत्पादन के लिए व्यवहार में लाया जाता था और शोषक श्रेणी जो साधनहीन लोगों को अपनी इच्छा से उत्पादन के काम में प्रयोग करती थी । “विकसित पूँजीवाद के युग में मध्यम श्रेणी की स्थिति को समझने के लिए यह याद रखना आवश्यक है कि श्रेणियों का विभाजन और संगठन उनकी आर्थिक स्थिति से होता है।”<sup>1</sup> ब्राउहेम ने सन् 1831 में ‘स्पेक्टेटर पत्रिका’ में लिखते हुए कहा है कि “मध्यमवर्ग ही देश का धन और बुद्धि माना जा सकता है ।”<sup>2</sup> मध्यमवर्ग का ऐतिहासिक स्रोत मुख्यतया व्यापार में पाया जाता है किन्तु यह स्रोत केवल व्यापार में ही निहित नहीं है ।<sup>3</sup> मध्यमवर्ग के विशिष्ट चिन्ह धन और अर्जित सम्पत्ति है और विशेषकर उनका एकत्र करना, संग्रह करना और उपयोग करना मध्यमवर्ग की प्रमुख पहचान है ।<sup>4</sup>

मध्यमवर्ग समाज के अभिजात्य वर्ग तथा निर्धन वर्ग के बीच में आता है, जिसके परिवेश को सीमित करना कठिन कार्य है । यह वर्ग इतना वृहत् है कि कहीं यह वर्ग उच्चवर्ग के निकट दिखाई देता है और कहीं निम्नवर्ग के

- 
1. यशपाल: मार्क्सवाद, विप्लव कार्यालय-लखनऊ, संस्करण: 1954, पृ. 173
  2. जी. एस. धुरे: कास्ट, क्लास एण्ड ओक्युपेशन, पृ. 290
  3. लियूस तथा मोडे: दि इंगलिश मिडिल क्लासेज, वाहमन एण्ड संस लिमिटेड-ग्रेट ब्रिटेन, संस्करण: 1949, पृ. 26
  4. यथोपरि, पृ. 63

साथ । वस्तुतः इसकी स्थिति त्रिशंकु जैसी है जो न पृथ्वी पर है और न आकाश में । वंश, आय, जीविका, शिक्षा, रहन-सहन, अभिरुचि, कौटुम्बिक तथा सामाजिक मर्यादा के अनुसार यह वर्ग समाज के अन्य दोनों ही वर्गों से पृथक् दिखाई देता है । इसी सामाजिक स्थान के आधार पर मध्यमवर्ग की सीमा में सभी जाति और वर्ग के लोग आ जाते हैं। अर्थ की इतनी प्रधानता होते हुए भी केवल अर्थ ही मध्यमवर्ग का मापक नहीं होता, इसकी ओर पहले इंगित किया जा चुका है। प्रत्येक देश और समाज में मध्यमवर्ग का अस्तित्व किसी-न-किसी रूप में विद्यमान अवश्य रहता है, पर अन्तर केवल उस विशिष्ट समाज के गठन और परिस्थितियों पर निर्भर करता है । इसीलिए अपने देश, काल और सीमा के अनुरूप विभिन्न देशों में मध्यमवर्ग का रूप परिवर्तित होता रहा है । उदाहरणस्वरूप हम अमरीका, इंग्लैंड, रूस तथा भारत के समाज को ले सकते हैं ।

अमेरिकन समाज को वार्नर ने छः प्रधान वर्गों में बाँटा है जिनमें उच्च-उच्च, निम्न-उच्च, उच्च-मध्यम, निम्न-मध्यम, उच्च-निम्न तथा निम्न-निम्न वर्ग हैं ।<sup>1</sup> मध्यमवर्ग की परिभाषा देते हुए वार्नर कहते हैं, “मध्यमवर्ग में सामान्य रूप से सफल व्यापारी और व्यवसायी तथा उनके परिवार सम्मिलित होते हैं । ये व्यक्ति शिक्षा और सभ्यता में निम्नवर्ग और उच्चवर्ग के मध्यम होते हैं तथा मध्यमवर्ग के मुख्य अंग कहलाते हैं । इनमें निम्न-मध्यमवर्ग के अन्तर्गत लघु व्यापारी, स्कूल अध्यापक और उद्योगों के प्रमुख व्यक्ति आते हैं।”<sup>2</sup> इस प्रकार वार्नर महोदय की सीमा रेखा के अनुसार अमरीकन समाज में थोड़े-बहुत आर्थिक अन्तर से मध्यमवर्ग में प्रायः वही लोग आ जाते हैं जो अन्य देशों के मध्यमवर्ग में मिलते हैं । अपनी सम्पत्ति और आय के अनुसार ही व्यक्ति मध्यमवर्गीय अमरीकी समाज में सम्मान का अधिकारी होता है ।

अमरीकी समाज के विपरीत इंग्लैंड के समाज में मध्यमवर्ग के लिए अर्थ को इतनी प्रधानता नहीं दी गई है । इंग्लैंड की आर्थिक स्थिति में सन् 1914

1. जे. ए. कहल, दि अमेरिकन क्लास स्ट्रक्चर, पृ. 26

2. यथोपरि, पृ. 26

के महायुद्ध के उपरान्त अन्तर आया और ब्रिटिश साम्राज्यवाद में पनपते हुए मध्यमवर्ग में भी परिवर्तन हुए। मध्यमवर्ग के अन्तर्गत दो प्रकार के वर्ग हो गए-एक जो 'वर्किंग क्लास' से अपने को उच्च मानते थे और दूसरे जो 'वर्किंग क्लास' से सहानुभूति रखते थे । सन् 1911-13 की अपेक्षा सन् 1919-21 में वर्ग-संघर्ष की भावना ग्रेट ब्रिटेन में तेजी से बढ़ने लगी । महायुद्ध के उपरान्त 'ब्लैक कोटड' मध्यमवर्ग का तेजी से विकास हुआ। यह वर्ग अधिक उदासीन, आलसी एवं अंधविश्वासी था ।

प्रथम महायुद्ध के उपरान्त सभी देशों की आर्थिक व्यवस्था को बड़ा धक्का लगा । जर्मनी की आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गई । न केवल किसानों और मजदूरों की स्थिति संकटमय थी, बल्कि पूँजीपति और उसके सहायक मध्यमवर्ग की आर्थिक अवस्था भी काफी गिर गई । उक्त आर्थिक विषमता और जीवन निर्वाह के संकट के समय मध्यमवर्ग ने अपनी स्थिति की रक्षा के लिए ऐसे प्रयत्न प्रारम्भ किए जिनमें न तो किसानों और मजदूरों का ही एकमेव शासन हो न पूँजीपतियों का । यशपाल के शब्दों में, "मध्यम श्रेणी का यह आंदोलन, साधनहीन श्रेणियों के मजदूर-किसानों के नेतृत्व में समाजवाद स्थापित करने के आंदोलन का विरोध कर रहा था । हिटलर इस श्रेणी का प्रतिनिधि था और उसने जर्मनी को गत युद्ध में अपमानित राष्ट्रीय भावना के प्रति सहानुभूति पाने के लिए अपने इस आंदोलन को राष्ट्रीय समाजवाद का नाम दिया ।"<sup>1</sup> नाजी शासन के अन्तर्गत 'मध्यम श्रेणी' उन्नति तो कर ही नहीं सकी वरन् उनकी स्थिति धीरे-धीरे और अधिक शोचनीय होती गई ।

समाजवाद के विकास के साथ ही रूस में महान् परिवर्तन हुए हैं। उत्पादन के साधनों पर निजी अधिकार की समाप्ति हो गई है। शोषक वर्ग का ग्राम तथा शहर से अन्त हो गया है । "अब रूस में केवल दो वर्ग हैं- 'वर्किंग क्लास' और दूसरे 'क्लेक्टिव फार्म पीजेन्टरी ।' इसके साथ ही

---

1. यशपाल-मार्क्सवाद, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, पृ० 108

बुद्धिजीवी वर्ग भी सम्मिलित है।”<sup>1</sup> बुद्धिजीवी वर्ग में भी समाजवाद के विकास के साथ परिवर्तन हुए हैं। “रूस का बुद्धिजीवी वर्ग प्रधान रूप से ‘वर्किंग क्लास’ से तथा किसानों से विकसित हुआ है और उसे उनसे अलग कर पाना नितान्त कठिन है।”<sup>2</sup> रूस जैसे समाजवादी देश में ‘वर्किंग क्लास’ को प्रमुखता दी गई है। व्यक्तिगत सम्पत्ति जैसी कोई चीज रूस में नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति जितना कार्य करता है, उतनी ही उसकी आमदनी होती है। इस प्रकार “रूस में शोषक एवं शोषित वर्ग न होकर केवल वर्किंग क्लास है और इस तरह समाजवादी रूस में कोई वर्ग-संघर्ष नहीं है।”<sup>3</sup>

इस प्रकार विदेशों में मध्यमवर्ग को अलग-अलग ढंग से जाना जाता है। अमेरिका में जिसके पास धन और सम्पत्ति है, उसी के अनुसार ही उसे मध्यमवर्ग की श्रेणी में लिया जाता है। इंग्लैंड में मध्यमवर्ग धन से नहीं बल्कि प्रथम विश्व युद्ध के बाद उनमें किस प्रकार के परिवर्तन आए और वर्गों का निर्माण हुआ। कहा जाता है कि उस समय मध्यमवर्ग आलसी, सुस्त और अंधविश्वासी था। प्रथम महायुद्ध से केवल इंग्लैंड की अर्थव्यवस्था में ही परिवर्तन नहीं हुआ बल्कि जर्मनी जैसे देशों में मध्यमवर्ग कहलाए जाने वाले लोगों की स्थिति और भी अधिक शोचनीय हो गई। रूस में वर्किंग क्लास को ही मध्यमवर्ग की श्रेणी में रखा जाता है क्योंकि उसके पास धन और बुद्धि दोनों होते हैं। यहाँ पर व्यक्तिगत सम्पत्ति जैसी कोई चीज नहीं होती बल्कि जो जितना कार्य करता है, उसी के अनुसार उसकी आमदनी होती है। विदेशों में अलग-अलग परिस्थितियों के अनुसार ही मध्यमवर्ग का निर्माण हुआ है।

### 1.2.7 भारत में मध्यमवर्ग का विकास

वर्तमान वैज्ञानिक प्रगति ने सभी देशों को इतना निकट ला दिया है कि एक देश दूसरे देश से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। भारत के मध्यमवर्ग

- 
1. जी० एफाना सेव-मार्क्सिस्ट फिलोसफी, पृ० 272
  2. वही, पृ० 273
  3. यथोपरि, पृ० 273

के विकास में अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों का बड़ा सहयोग रहा है । प्रथम महायुद्ध के पश्चात् भारत में मध्यमवर्ग का केवल प्रसार ही नहीं हुआ अपितु उनकी अपनी सुनिश्चित तथा स्पष्ट इकाई भी बन गई, जिसका व्यापक प्रभाव हम आज भारतीय समाज के प्रत्येक अंग पर देख सकते हैं । आज भारतीय जीवन का कोई भी ऐसा पक्ष नहीं है जिस पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मध्यमवर्ग ने अपना प्रभाव न डाला हो । भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का इतिहास भी हमें यही बताता है कि सारे आंदोलन का नेतृत्व का अधिकांश श्रेय इसी मध्यमवर्ग को है ।

भारत में आधुनिक मध्यमवर्ग के उद्भव और विकास का दायित्व अंग्रेजी साम्राज्य पर है । अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारतीय गाँव आर्थिक दृष्टि से इकाई होते थे, पर अंग्रेजी शासन ने उस आर्थिक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन कर दिया जिसे अंग्रेजों से पूर्व के भारतीय मध्यमवर्ग के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए नासिर अहमद खाँ लिखते हैं, “समाज के उच्च स्तर के व्यक्तियों में राजगुरु, क्षत्रिय राजा और उसके अभिकर्ता सम्मिलित थे । इन व्यक्तियों में ब्राह्मण, अध्यापक, उपदेशक, क्षत्रिय, शूरवीर और राजनीतिक नेता भी थे । कुछ ऐसे भी व्यक्ति थे जो शासन व्यवस्था में सहायता करते थे । ये सभी व्यक्ति मध्यमवर्ग के ही थे। इन व्यक्तियों में वैश्य जाति के लोग भी शामिल थे जो विशेषकर सौदागर, पूँजीपोषक और औद्योगिक थे । सामन्त युग में उच्च और मध्यमवर्ग के व्यक्ति बढ़ते गए ।”<sup>1</sup> भारत की आर्थिक अवस्था के साथ ही अंग्रेजों के आगमन से राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन पर भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा । ए० आर० देसाई मध्यमवर्ग के विकास में अंग्रेजी शिक्षा को उत्तरदायी मानते हैं, “अंग्रेजों ने भारत में नवीन शिक्षा-पद्धति का सूत्रपात किया जिसके फलस्वरूप शिक्षित मध्यमवर्ग का निर्माण हुआ। उस वर्ग में वकील, डॉक्टर, टैक्नीशियन, प्रोफेसर, पत्रकार, राज्य कर्मचारी, क्लर्क, विद्यार्थी और अन्य व्यक्ति सम्मिलित थे ।”<sup>2</sup>

1. नासिर अहमद खाँ- मिडिल क्लास इन इण्डिया, पृ० 3

2. ए० आर० देसाई-सोशल बेकग्राउण्ड ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म, पृ० 182

अंग्रेजी शिक्षा के साथ ही भारतीय मध्यमवर्ग के विकास में पूँजीवादी व्यवस्था का विशेष योगदान रहा है । इस दिशा में अन्य पूँजीवादी देशों की अपेक्षा भारत की स्थिति कुछ विशिष्ट है, क्योंकि भारत जो शताब्दियों तक परतन्त्र रह चुका है उसमें पूँजीवादी व्यवस्था भी अन्य देशों की समकक्षता उतने स्वस्थ ढंग से विकसित न हो सकी । परिणामस्वरूप इस अर्ध-विकसित पूँजीवादी व्यवस्था का परिणाम भारतीय मध्यमवर्ग पर अपने अधिकचरे रूप में पड़ा जिसके कारण भारतीय मध्यमवर्ग में निराशा और असन्तोष की भावना अपेक्षाकृत अधिक प्रबल है जैसा कि हुमायूँ कबीर लिखते हैं, “सभी जगह मध्यमवर्ग यह अनुभव करने लगा कि उसका कोई भविष्य नहीं है। भारत में उसकी दशा और भी दयनीय है । पूँजीवाद के विकास ने अन्य देशों में सामाजिक अर्थ-व्यवस्था में उसके लिए स्थान बना दिया है, पर भारत में पूँजीवाद को अंग्रेजों ने राजनीतिक और आर्थिक दबावों के कारण बढ़ने नहीं दिया । इस पर भी, समाज की अन्य श्रेणियों का झुकाव, मध्यमवर्ग की अपेक्षाकृत अधिक अच्छी दशा देखकर उसकी ओर बराबर ही रहा । मध्यमवर्ग इतना बढ़ा कि मौजूदा आर्थिक स्थिति उस संस्था को संभाल न सकी ।”<sup>1</sup> इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय पूँजीवादी व्यवस्था ने यहाँ के मध्यमवर्ग को काफी दूर तक प्रभावित किया है ।

भारत का आंग्ल-भारतीय सम्पर्क शिक्षा के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी मध्यमवर्ग के विकास में पर्याप्त सहायक रहा । शिक्षा के साथ ही पाश्चात्य संस्कृति ने भी भारतीय मध्यमवर्ग को काफी प्रभावित किया है । अंग्रेजों की भाषा, रहन-सहन, रीति-रिवाज का प्रभाव नई पीढ़ी (बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध की पीढ़ी) पर पड़ा । यद्यपि राजाराम मोहनराय तथा उनके सहयोगी अंग्रेजी भाषा के अध्ययन के साथ ही अंग्रेजी संस्कृति से भी काफी प्रभावित थे, परन्तु उनमें भारतीय संस्कृति की जड़े काफी गहराई से जमी हुई थीं। पर राजाराम मोहनराय की परवर्ती पीढ़ी में भारतीय संस्कृति के प्रति वैसी दृढ़ आस्था देखने

---

1. हुमायूँ कबीर-इण्डियन हैरिटेज, पृ० 114

को नहीं मिलती । परिणामस्वरूप वह पश्चिमी सभ्यता की धारा के प्रभाव में बह गई ।”<sup>1</sup> भारतीयों के जीवन में अंग्रेजों द्वारा जो संस्कार बैठा दिए गए थे, आज भी मध्यमवर्ग उनसे मुक्त नहीं हो सका है । लार्ड मैकाले का अंग्रेजी शिक्षा का उद्देश्य ही भारतीयों को शरीर से भारतीय और मन से अंग्रेज बनाने का था । मैकाले की दृष्टि में, “अंग्रेजी शिक्षा द्वारा एक ऐसे वर्ग को जन्म देना था जो हमारे और करोड़ों लोगों, जिन पर शासन किया जा रहा है, सम्पर्क बनाने वाले के रूप में बने, जो केवल खून और रंग में भारतीय हो, परन्तु रूचि, विचार, नैतिकता एवं बुद्धि से पूर्णतः अंग्रेज हो ।”<sup>2</sup> इस प्रकार भारतीय मध्यमवर्ग के विकास का दायित्व मुख्य रूप से आंग्ल-भारतीय सम्पर्क तथा अंग्रेजी शिक्षा और पूँजीवादी व्यवस्था पर अधिक है ।

### 1.2.8 मध्यमवर्ग की विविध स्थितियाँ

अंग्रेजों के आगमन ने केवल सांस्कृतिक दृष्टि से ही भारत पर प्रभाव नहीं डाला, वरन् आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक - सभी क्षेत्रों में प्रभावित किया । भारत के प्राचीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक ढांचे को अंग्रेजों के आगमन से बाधा पहुँची । राजनीतिक क्षेत्र में शासक वर्ग (अंग्रेजों) ने सत्ता पर अधिकार करके देश में शोषण की नीति अपनायी जिसके कारण भारतीय कृषि-व्यवस्था को भयंकर क्षति पहुँची । “भारतीय कृषि के नष्ट-भ्रष्ट होने से गाँवों से अधिक संख्या में लोग नौकरी की आशा में शहरों में आने लगे और इस प्रकार आर्थिक व्यवस्था के परिवर्तन के साथ एक नया वर्ग (मध्यमवर्ग) धीरे-धीरे विकसित होने लगा ।”<sup>3</sup>

शहरों में आकर नई शिक्षा में पला हुआ एक नया बाबू वर्ग विकसित हुआ जिसके द्वारा अंग्रेजी शासन की जड़ें भारत में दृढ़ होती गई । जैसे-जैसे इस बाबू वर्ग की संख्या बढ़ती गई, मध्यमवर्ग अपने सम्पूर्ण अवयवों के साथ

- 
1. के. सी. व्यास-दि सोशल रेनेसां इन इण्डिया, वोरा एण्ड कम्पनी प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई, पृ. 46
  2. फ्रेंक मोरेस, इण्डिया टुडे, दि मैकमिलन कम्पनी, न्यूयार्क, 1960, पृ. 53
  3. के. सी. व्यास, दि सोशल रेनेसां इन इण्डिया, पृ. 46



पुष्ट होता गया । गाँवों में बिगड़ती आर्थिक अवस्था के कारण ग्रामीण जीवन का एक वर्ग शहर में आकर मजदूरों की जिन्दगी गुजारने पर विवश हुआ । इतना ही नहीं, इन्हीं विस्थापित गाँवों के लोगों में से कुछ लोग शहरों में जाकर पलटन के सिपाही, दफ्तरों के चपरासी, पुलिसमैन, गुमाश्ते, नौकर, रसोइये, चौकीदार या छोटी-मोटी फेरी वाले सौदागर बन गए ।

इस प्रकार गाँव से शहर में पेट की समस्या को हल करने के लिए आये हुए इन विभिन्न वर्गों के लोगों का अपना एक विशिष्ट समुदाय बन गया। यह भी मध्यमवर्ग का एक अंग विशेष ही था। इस प्रकार शिक्षित, अर्द्ध-शिक्षित और अशिक्षित सभी प्रकार के लोगों द्वारा शहरी मध्यमवर्ग के लोगों की संख्या दिनों-दिन बढ़ती गई ।

अपनी विषम आर्थिक परिस्थितियों के साथ ही मध्यमवर्ग राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओं से भी आक्रान्त रहता है । “संसार भर के आर्थिक संघर्ष ने गहन रूप से नवीन मध्यमवर्ग को भी सामान्य यातना का अंश बना दिया । राष्ट्रीय आय में भारी कमी तथा आवश्यक व्यय-भार को ही स्वीकार करने की दृष्टि से वेतनों में प्रायः कमी की जाने लगी, अनियमित भुगतान रोक दिए गए, पदोन्नतियों को कम किया जाने लगा, कर्मचारियों की संख्या कम की जाने लगी, समय से पहले ही पेंशनें दी जाने लगीं और अनिवार्य रूप से कर्मचारियों को सेवा से मुक्त किया जाने लगा ।”<sup>1</sup>

मध्यमवर्गीय समाज के मनोवैज्ञानिक पक्ष की समाज की अन्य श्रेणियों से तुलना करते हुए हुमायूँ कबीर ने लिखा है- “आधुनिक भारत का सम्भवतः सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य मध्यमवर्ग का असंतुलित फैलाव है । सम्पूर्ण विश्व में मध्यमवर्ग के लोग अशान्त, आलोचक और व्यक्तिवादी हैं । ऐसी स्थिति के कारण उनकी आर्थिक स्थिति डाँवाडोल है । वे अनुभव करते हैं कि उन्हें सम्मानपूर्ण स्तर बनाए रखना आवश्यक है, जो प्रायः उनके साधनों की पहुँच के बाहर होता है। लगातार आर्थिक संघर्ष उनके समस्त दृष्टिकोण पर प्रभाव

1. इन्साइक्लोपीडिया आफ दी सोशल साइन्सेज, भाग 10-11, 13वां प्रकाशन, 1949

डालता रहता है । मध्यमवर्ग संतुष्ट नहीं रहता और वह प्रायः उदण्ड, आत्म प्रदर्शनकारी और मुँहफट होता है । अपने पक्ष का समर्थन करने के लिए वह दूसरों की आलोचना करता है ।”<sup>1</sup>

इस प्रकार आर्थिक दुर्व्यवस्था से आक्रान्त मध्यमवर्गीय जीवन में अनेक समस्याएँ जन्म लेती हैं । शिक्षा और बेकारी की समस्या उसे ईर्ष्यालु, अनुदार और कृपण बना देती है ।

अन्य देशों के अनुरूप अपने असंतुलित फैलाव के कारण मध्यमवर्ग के सामाजिक और आर्थिक आयाम भी बदले हैं । भारतीय सामाजिक व्यवस्था में भी परिवर्तन आये हैं । धीरे-धीरे प्राचीन मान्यताओं की आलोचना और नवीन विचारों की स्थापना होने लगी। रूढ़िवादी परम्पराओं के प्रति नये मध्यमवर्ग ने विद्रोह किया । आर्थिक-सामाजिक समस्या से उद्धृत रोजी और रोटी की समस्या ने मध्यमवर्ग को नितान्त स्वार्थी बना दिया ।

परिवर्तन के लिए व्याकुल मध्यमवर्ग असंतोष, आक्रोश, विवशता और घुटन में जी रहा है । “हमारा औसत बुद्धिजीवी परायीकृत से अधिक विभ्रान्त है । इसलिए उसमें धुरीहीनता की विडम्बना आ जाती है, वह न चाहकर भी जीविका के लिए अपनी स्वतन्त्रता बेचता है और एक मिथ्या चेतना ओढ़ता है, वह सत्ता और शासन के भय से अपने विचारों की आस्था छिपाता है । हम जानते हैं कि आत्म-परायेपन का ऐसा विकृत रूप समृद्ध देशों के बुद्धिजीवियों में नहीं है ।”<sup>2</sup>

सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं के साथ ही धार्मिक और राजनीतिक समस्या भी मध्यमवर्ग को बराबर आक्रान्त किये रहती है। धार्मिक रूढ़िवादिता का विरोध मध्यमवर्ग ने सबसे अधिक किया है। राजनीति के क्षेत्र में जितने भी आंदोलन हुए हैं उनमें भी मध्यमवर्ग ही अग्रणी रहा है ।

---

1. हुमायुँ कबीर, इण्डियन हैरिटेज, पृ० 117

2. रमेश कुंतल मेघ, समसामयिक परिदृश्य में भारतीय बुद्धिजीवियों का आत्म-परायापन, माध्यम 1967, पृ० 14

इस प्रकार जहाँ एक ओर यह वर्ग अपनी समस्याओं से आक्रान्त है, वहीं दूसरी ओर समाज को जीवन के प्रति आस्था और विश्वास का स्वर भी इसने ही दिया है । आज मध्यमवर्ग का व्यक्ति अधिक प्रतिद्वन्द्विता के कारण अनेक व्यंग्य, लांछन, उपहास, उपेक्षाएँ सहन करने पर भी अपने नैतिक आदर्श के बल पर पूँजीपतियों के क्रूर कुचक्रों से लड़ रहा है ।

### 1.2.9 मध्यमवर्ग की विशिष्टताएँ

मध्यमवर्ग की समस्याओं और सबलताओं के साथ ही उसकी निजी दुर्बलताएँ भी हैं जिनके कारण भी अन्य वर्गों से अपेक्षाकृत अधिक आक्रान्त है। मध्यमवर्ग की सबसे बड़ी दुर्बलता है कि वह कुल मर्यादा को निभाने के लिए अनेक प्रदर्शन करता है और वे प्रदर्शन उसकी आर्थिक स्थिति से मेल न खाकर मानसिक संघर्ष का कारण बन जाते हैं । अपनी स्थिति से बढ़कर अपने को प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति ने मध्यमवर्ग को खोखला बना दिया है । कुल की मर्यादा का रक्षण मध्यमवर्ग का सबसे बड़ा शत्रु है । उसे निरन्तर तथाकथित कुलीनता और रूढ़िग्रस्त जर्जर मर्यादा से सदा जूझना पड़ता है। उसे बहुमुखी संघर्ष के कारण उसकी आन्तरिक स्थिति बड़ी खोखली हो गई है जिसके अभाव की पूर्ति वह अपनी कुलीनता की भावना से करता है । मध्यमवर्ग के व्यक्ति अभिजात्य वर्ग तक पहुँचने के आकांक्षी अवश्य रहते हैं, परन्तु आर्थिक अभाव के कारण खोखला प्रदर्शन ही कर पाते हैं । घर में धन न हो, परन्तु कर्ज लेकर वे अपनी ऊपरी शान-शौकत को बनाए रखते हैं। परिणामस्वरूप धीरे-धीरे यह वर्ग आर्थिक दृष्टि से पंगु होता जा रहा है और अनेक प्रकार की आर्थिक विषमताओं का शिकार होकर निरन्तर मानसिक कुंठाओं से ग्रस्त होता हुआ अपना अस्तित्व खोता जा रहा है ।

मध्यमवर्ग की स्वार्थी मनोवृत्ति भी उसकी स्थिति को समाज में विषम बनाती जा रही है । मध्यमवर्ग में ऐसे व्यक्तियों की संख्या अधिक है जो अपने ही लाभ-हानि से अधिक चिंतित रहते हैं तथा दूसरे किसी के कष्ट और हानि की ओर ध्यान नहीं देते । जिस प्रकार बड़ी मछली छोटी मछली को

खाकर अपनी क्षुधा शान्त करती है, उसी प्रकार आज के मध्यमवर्ग का व्यक्ति भी अपने ही वर्ग वालों का शोषण कर वैयक्तिक उन्नति में तल्लीन रहता है।

मध्यमवर्ग का व्यक्ति महत्वाकांक्षी हो जाने के कारण आत्मकेंद्रित तथा कल्पनाप्रिय भी होता है। वह जीवन की यथार्थता को साहित्य और कला के माध्यम से छिपाने का प्रयत्न करता है। मध्यमवर्ग के व्यक्ति अधिक संवेदनशील होते हैं। इस वर्ग में दो प्रकार के व्यक्ति होते हैं- एक जो हर प्राचीन मान्यता एवं विश्वास को चाहे, वह युग के अनुरूप हो या न हो, ओढ़े जा रहे हैं और किसी भी प्रकार का कोई सुधार या विरोध सहन नहीं करते और दूसरे प्रकार के वे जो हर नयी मान्यता एवं नये विचार को प्रतिष्ठित करने में सतत प्रयत्नशील रहता है।

भारत के नवविकसित मध्यमवर्ग ने प्राचीन रूढ़िवादी जाति-व्यवस्था, सती-प्रथा, अनमेल विवाह तथा विधवा की असहाय अवस्था के विरुद्ध आवाज उठाकर धर्म और विवेक के समन्वय द्वारा नवीन लोकतान्त्रिक आदर्शों के अनुकूल भारतीय समाज का पुनर्गठन करने का सर्वप्रथम प्रयत्न किया जिसका रूप हम समकालीन उपन्यास-साहित्य में निरन्तर देखते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में विभिन्न सामाजिक एवं राजनीतिक आन्दोलनों का अग्रणी भी यही मध्यमवर्ग रहा है। बीसवीं शताब्दी में पाश्चात्य संस्कृति एवं अंग्रेजी शिक्षा के प्रति अभिरूचि दिखाकर नवीन प्रगतिशील तत्त्वों को मध्यमवर्ग ने आत्मसात किया और प्रथम महायुद्ध के पश्चात् भारतीय मध्यमवर्ग की व्यक्तिवादी चेतना सशक्त होती गई। द्वितीय महायुद्ध के उपरांत बदलते हुए राजनीतिक परिवेश और आजादी के बाद की बढ़ती हुई महँगाई और बेकारी की समस्या के कारण मध्यमवर्ग का विद्रोही स्वर और भी प्रखर होता गया जिसे नवीन युग के उपन्यासकारों ने विभिन्न रूपा में मुखरित किया है।

### 1.2.10 मध्यमवर्ग और हिन्दी उपन्यास

पश्चिमी उपन्यास का स्वरूप दिखाते हुए आचार्य नंददुलारे वाजपेयी लिखते हैं, “मध्ययुग के सामन्ती समाज का अन्त होने पर जब नवीन औद्योगिक सभ्यता का आविर्भाव हो रहा था और नगरों में नवीन मध्यमवर्ग की सत्ता स्थापित हो रही थी, उसी समय उपन्यास के साहित्यीक आविर्भाव हुआ। इस प्रकार उपन्यास एक ओर गद्य साहित्य के निर्माण और विकास का समकालीन है और दूसरी ओर वह मध्यमवर्ग के उत्थान का समसामयिक है।”<sup>1</sup> बच्चन सिंह भी मानते हैं, “पाश्चात्य देशों तथा भारतवर्ष के उपन्यासों के आविर्भाव और मध्यमवर्ग के उदय में एक नैसर्गिक समानांतरता दिखाई देती है।”<sup>2</sup> इसमें सन्देह नहीं कि पश्चिमी उपन्यास, विशेष रूप से इंग्लैंड में लिखे गए उपन्यासों के उद्भव और विकास के साथ भारतीय मध्यमवर्ग के उद्भव और विकास की समानांतरता नहीं है। भारतीय मध्यमवर्ग का एक साथ न तो उद्भव हुआ और न ही विकास। कारण यह है कि विदेशियों ने भारत का प्रशासन एक ही बार अपने हाथों में नहीं लिया। केवल बंगाल से लेकर पंजाब तक के भू-भाग को अपने अधीन करने में अंग्रेजों को 1757 से 1857 तक का समय लग गया। भारत का जो भाग अंग्रेजों के अधीन पहले आया, वहाँ अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार से तथा अन्य कारणों से मध्यमवर्ग पहले अस्तित्व में आया। फिर भी सन् 1857 तक भारत में रेल आरंभ हो चुकी थी, डाक व्यवस्था को आरंभ कर दिया गया था, प्रान्तों में शिक्षा-विभागों की स्थापना हो चुकी थी। इसलिए हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेश में भी मध्यमवर्ग का उद्भव हो चुका था। पर 1857 ई० तक हिन्दी क्षेत्र में एक भी उपन्यास दिखाई

- 
1. आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य, प्रथम संस्करण 2007, पृ० 123
  2. बच्चन सिंह, आलोचना, 13 उपन्यास विशेषांक, मध्यमवर्गीय वस्तु-तत्त्व का विकास, पृ० 125

नहीं देता । अंग्रेजी ढंग पर लिखा गया हिन्दी का प्रथम उपन्यास 'परीक्षा गुरु' 1882 ई० में प्रकट हुआ । अतः मध्यमवर्ग के उद्भव और हिन्दी उपन्यास के उद्भव में कोई समानता नहीं है । फिर, हिन्दी उपन्यास में मध्यमवर्ग का जो चित्रण 'परीक्षा गुरु' में मिलता है, उसके पुनः दर्शन सेवासदन (1918) से पूर्व किसी उपन्यास में प्रायः नहीं होते । इंग्लैंड आदि पाश्चात्य देशों में मध्यमवर्ग के उद्भव की परिस्थितियाँ भिन्न थी । वहाँ औद्योगीकरण के कारण सामन्ती समाज का अस्तित्व मिटने लगा और मध्यमवर्ग का विकास होने लगा था । भारत के मध्यमवर्ग के विकास में अंग्रेजी शिक्षा सहायक सिद्ध हुई है । सुषमा धवन भी उपन्यास का उद्भव और विकास मध्यमवर्ग के उदय और विकास से अभिन्न रूप में सम्बद्ध मानती हैं।<sup>1</sup> उन्होंने यह भी माना है कि प्रेमचंद में व्यक्ति सत्य और व्यक्ति के महत्त्व की स्थापना, उस समय के मध्यमवर्ग के उदय तथा उसकी सुधारवादी चेतना का सूचक है । बाद में प्रेमचन्द के दृष्टिकोण में जो परिवर्तन हुआ वह मध्यमवर्ग के विकास एवं हास का द्योतक है ।<sup>2</sup> वास्तव में मध्यमवर्ग का हास प्रेमचंद के जीवनकाल में हुआ ही नहीं। मध्यमवर्ग का हास के कुछ लक्षण द्वितीय महायुद्ध के अन्त में दिखाई देने लगे थे । इससे पूर्व भारतीय मध्यमवर्ग यदि कहीं विचलित दिखाई दिया है तो वह 1929 ई० के आस-पास आर्थिक उपन्यास में दिखाई देता है, वह मध्यमवर्ग के हास के कारण नहीं है, उसके अन्य अनेक कारण हैं, जिनकी व्याख्या हमारे विषय से सम्बन्धित नहीं है । हमारे विचार में हिन्दी उपन्यास और मध्यमवर्ग का इतना ही सम्बन्ध है कि उपन्यासों में मध्यमवर्गीय समाज का चित्रण प्रेमचन्द युग के आरम्भ से उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया है और देवेश ठाकुर ने तो अपने उपन्यासों में सबसे अधिक मध्यमवर्ग के यथार्थ का ही वर्णन किया है ।

---

1. सुषमा धवन, हिन्दी उपन्यास, (1961 ई० प्रथम संस्करण), पृ० 1

2. वही, पृ० 3

वर्ग किसी समाज का आवश्यक एवं अनिवार्य अंग होता है जिसका निर्माण उस समाज के श्रम, उत्पादन तथा वितरण के साधनों द्वारा होता है । इसके साथ मनुष्य की वंश-परम्परा, शिक्षा, आय, रहन-सहन का स्तर तथा व्यक्ति की प्रतिभा भी उसे विशिष्ट वर्ग का व्यक्ति प्रतिष्ठित करने में सहायक होती है । अपनी अतलदर्शी प्रतिभा के बल पर मार्क्स ने न केवल वर्ग-संघर्ष की भावना को एक वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया अपितु समाज के विभिन्न वर्गों का नामकरण करते हुए उसने प्रमुख रूप से तीन वर्गों की कल्पना की है जिनमें 'मध्यमवर्ग' अलग स्वतन्त्र वर्ग के रूप में विस्तार पाता जा रहा है । समाज ने भी तीन वर्गों को माना है जिनमें उच्चवर्ग, निम्नवर्ग और मध्यमवर्ग हैं । विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने अनुसार मध्यमवर्ग की परिभाषाएँ दी हैं लेकिन समाज में इसके व्यापक प्रभाव को देखते हुए एक सीमित परिभाषा दे पाना निश्चय ही कठिन कार्य है क्योंकि मध्यमवर्ग के कुछ सदस्य एक ओर उच्चवर्ग से मुश्किल से पृथक किए जा सकते हैं, तो दूसरी ओर निम्नवर्ग से उनका बहुत न्यून अन्तर रह जाता है । इसलिए मध्यमवर्ग के भी तीन भाग किये गए हैं जिनमें उच्च मध्यमवर्ग, मध्य मध्यमवर्ग तथा निम्न मध्यमवर्ग हैं। इंग्लैंड की औद्योगिक क्रान्ति, फ्रांस की राज्य क्रान्ति और रूसी समाजवादी क्रान्ति ने विश्व की आर्थिक व्यवस्था पर काफी प्रभाव डाला है जिससे समाज में वर्ग उत्पन्न हुए तथा विभिन्न प्रकार के सामाजिक परिवर्तन हुए । वर्तमान वैज्ञानिक प्रगति ने सभी देशों को इतना निकट ला दिया है जिससे एक देश दूसरे देश से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता । भारत के मध्यमवर्ग के विकास में अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों तथा दोनों युद्धों का बड़ा सहयोग रहा और इसको निरन्तर आगे बढ़ाने का दायित्व अंग्रेजी साम्राज्य, अंग्रेजी शिक्षा तथा पूँजीवादी व्यवस्था पर अधिक है । अंग्रेजों के आगमन ने केवल सांस्कृतिक दृष्टि से ही भारत पर प्रभाव नहीं डाला, वरन् आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक सभी क्षेत्रों में प्रभावित किया । उन्नीसवीं शताब्दी में विभिन्न सामाजिक एवं

राजनीतिक आंदोलनों का अग्रणी भी यही मध्यमवर्ग रहा है । यह वर्ग विभिन्न प्रकार की विशिष्टताओं के बावजूद निरन्तर समस्याओं से घिरा रहता है जिसका वर्णन प्रेमचन्द युग से आरम्भ होकर उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया है तथा देवेश ठाकुर ने लगभग अपने सभी उपन्यासों में मध्यमवर्ग के यथार्थ को ही दिखाया है ।

-----